योगविद्या

वर्ष 9 अंक 4
अप्रैल 2020
सदस्यता डाकखर्च – रु100

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरि: ॐ

योगविद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2020

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या : 58 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर एवं अन्दर के रंगीन फोटो : बसंत पंचमी 2020, गंगा दर्शन

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

घमण्ड का दुष्परिणाम

मनुष्य के पास ज्यों-ही कुछ धन, अधिकार, नाम अथवा यश आ जाता है वह घमण्डी बन जाता है। वह अपने को बहुत बड़ा समझने लगता है और दूसरों से घृणा करने लगता है। दूसरों के साथ मिलने-जुलने में वह अपना अपमान समझता है।

जिस प्रकार सांसारिक लोग सम्पत्ति पाकर घमण्ड से फूल जाते हैं, उसी प्रकार साधु और धार्मिक लोग भी अपने नैतिक गुणों की डींग मारने लगते हैं। किसी में सेवा या आत्म-त्याग का गुण हो तो वह भी कहेगा, 'मैं पिछले दस वर्षों से ब्रह्मचर्य और योगाभ्यास की साधना कर रहा हूँ, मेरे अलावा कौन ऐसा कर सकता है?'

प्रिय अमरपुत्रों! याद रखो कि इस प्रकार का घमण्ड, भौतिक तथा आध्यात्मिक, दोनों प्रकार के मार्गों पर बड़ी बाधा है। इसका परिणाम आखिर में पतन ही होता है।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर–811201, बिहार के लिए स्वामी ज्ञानभिक्षु सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद–121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 9 अंक 4 अप्रैल 2020
(प्रकाशन का 58 वाँ वर्ष)

विषय सूची

4 समन्वित योग की साधना
9 ध्यानयोग पर विहंगम दृष्टि
14 भावना का परिष्कार
23 कर्म का सिद्धांत
31 वासनाओं का निर्मूलन
37 योग और सामाजिक परिवर्तन
47 योग सनातन
48 कर्मों में रचनात्मकता
51 यौगिक अध्ययन अनुभव 2019-2020

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

समन्वित योग की साधना

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

विद्वत्तापूर्ण तर्क तथा शब्द-जाल से आप आत्म-साक्षात्कार प्राप्त नहीं कर सकते। समन्वय योग की साधना द्वारा आपको बुद्धि, भावना तथा कर्म का सर्वांगीण विकास करना होगा। तभी आप पूर्णता प्राप्त कर सकेंगे।

'अहं ब्रह्मास्मि' अथवा 'शिवोऽहम्' का जप करना आसान है, परन्तु उसका अनुभव करना बड़ा ही कठिन है। सभी प्राणियों से एकता स्थापित करना बड़ा कठिन है। निष्काम-सेवा, जप, कीर्त्तन तथा उपासना के द्वारा जब तक मन के मल दूर न हो जाएँ, समाधि की संभावना नहीं है। जप तथा उपासना के द्वारा मन का विक्षेप दूर होगा। मन के विक्षिप्त रहने पर आप ब्रह्म-भावना कैसे कर सकते हैं?

दत्तात्रेय तथा याज्ञवल्क्य जैसे लोग ही वास्तव में वेदान्त साधना के अधिकारी हैं। वे लोग ही, जो देह-चेतना से ऊपर उठ गए हैं, अधिकारपूर्वक ऐसा कह सकते हैं कि जगत् मिथ्या है, जगत् है ही नहीं, यह जगत् मृग-मरीचिका अथवा स्वप्न ही है। आप सभी रोटी तथा दाल ही हैं। आप चौबीसों घण्टे अन्नमय कोश में ही रहते हैं। चाय में चीनी कम हो या दाल में नमक ज्यादा हो तो आप अशान्त हो जाते हैं। ऐसे में शिवोहम् अथवा अहं ब्रह्मास्मि अथवा सोहम् का जप करना तो व्यर्थ ही है।

आप कल्पना करते हैं कि आप तुरीयावस्था को प्राप्त कर चुके हैं। आप समझते हैं कि आपने शरीर चेतना का अतिक्रमण कर लिया है। परन्तु यदि व्यावहारिक जाँच की गई तो आप गहरी विफलता प्राप्त करेंगे। भगवान बुद्ध की भी जाँच हुई थी, उन्हें प्रलोभित किया गया था। अप्पर तथा अन्य सभी साधु-संतों की परीक्षा हुई थी। वे सभी परीक्षा में विजयी निकले। यम-नियम के अभ्यास द्वारा पहले दृढ़ नींव का निर्माण कर लीजिए। निष्काम सेवा तथा उपासना के द्वारा हृदय के शुद्ध हो जाने पर ही वेदान्त की इमारत खड़ी की जा सकती है। ईश्वर की कृपा द्वारा ही मन में अवस्थित सूक्ष्म वृत्तियों का विनाश सम्भव है। वैयक्तिक साधना द्वारा आप करोड़ों जन्म में भी मन के मल को दूर नहीं कर सकते। जिस व्यक्ति को भगवान अपने चरणों में लाना चाहता है, वह उसे पूर्ण तथा मुक्त बना डालता है। यह कठोपनिषद् की भी घोषणा है।

मनुष्य अद्वैत दर्शन पर कई घण्टों तक भाषण दे सकता है। एक ही श्लोक की सैकड़ों प्रकार से व्याख्या कर सकता है। गीता के एक ही श्लोक पर वह एक हफ्ता भाषण दे सकता है, फिर भी उसमें रंचमात्र भी भक्ति तथा वेदान्त-साक्षात्कार नहीं हो सकता। यह सब शुष्क बौद्धिक व्यायाम है, उसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं। वेदान्त तो जीवन्त अनुभव है। वेदान्ती को इसका विज्ञापन करने की आवश्यकता

नहीं कि वह अद्वैती है। वेदान्तिक एकता की मधुर सुरभि सदा उससे संचारित होती रहेगी। कोई भी व्यक्ति इसका अनुभव कर सकता है।

मन्दिर में किसी मूर्त्ति के समक्ष नमन करने से वेदान्ती लज्जा का अनुभव करता है। वह सोचता है कि साष्टांग प्रणाम करने से उसका वेदान्तिक अनुभव वाष्पवत् विलीन हो जाएगा। अप्पर, सुन्दरर आदि विख्यात तमिल साधुओं के जीवन को पढ़िए। उन्हें परम अद्वैत साक्षात्कार प्राप्त था। वे सर्वत्र भगवान शिव के दर्शन करते थे। वे सभी शिव मन्दिरों में जाकर साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करते थे। वे शिवजी की स्तुति करते थे। उन स्तुतियों का संग्रह पुस्तकों में अब भी प्राप्त है। साठ नायनार सन्तों ने केवल चर्या तथा क्रिया का अभ्यास किया तथा साक्षात्कार प्राप्त कर लिया। वे मन्दिर के फर्श को साफ करते, फूलों का संग्रह करते, प्रभु के लिए माला बनाते तथा मन्दिर में दीप जलाते थे। उनके हृदय भक्ति से संतृप्त थे। वे कर्मयोग के मूर्त्तिमान स्वरुप थे। उन सब ने समन्वय योग का अभ्यास किया। मन्दिर की मूर्त्ति उनके लिए चैतन्य-स्वरूप थी। वह प्रस्तर-खण्ड मात्र न थी।

चाय की आदत को भी दूर करना कितना कठिन है। यह तो कुछ ही वर्षों से बनी हुई है। यदि एक दिन भी आप चाय न लें, तो कब्ज तथा सिर-दर्द की शिकायत करने लगते हैं। आप काम करने में समर्थ नहीं होते। आप कितने दुर्बल बन गये हैं! फिर मन में गहरी गड़ी हुई बुरी वृत्तियों का उन्मूलन करना कितना कठिन होगा! उन वृत्तियों ने पुनरावृत्ति के द्वारा कितना बल प्राप्त कर लिया है। वेदान्त का वक्ता बनना आसान है। यदि आप कुछ वर्षों तक पुस्तकालय में बैठकर अपने शब्द-कोष को बढ़ा लें तथा कुछ सन्दर्भों को याद कर लें, तो आप सुन्दर भाषण दे सकेंगे। परन्तु

किसी दुर्गुण को दूर करना उतना आसान नहीं है। सच्चा साधक ही इस कठिनाई को समझ सकता है।

आँखें बन्द कर लीजिए और विचार कीजिये, आपने अपने जीवन में कितने सत्कर्म किए हैं, जिन्हें ईश्वर के लिए अर्पित किया जा सके तथा जो वास्तव में ईश्वर को प्रसन्न कर सकें। हो सकता है कि कोई भी निष्काम कर्म न हो। कर्म योग के अभ्यास के लिए अधिक धन की आवश्यकता नहीं है। मानव जाति की सेवा के लिए करुणापूर्ण हृदय की आवश्यकता है। यदि आप सड़क के किनारे किसी गरीब को पीड़ित देखें, तो उसे अपनी पीठ पर बैठाकर अस्पताल में भर्ती करा दें। अपने पड़ोस के गरीब एवं बीमार व्यक्ति की सेवा करें। अस्पताल जाकर प्रेमपूर्ण हृदय से रोगी व्यक्तियों की सेवा करें। उनके स्वास्थ्य के लिए प्रार्थना करें। उनके सामने गीता का पाठ करें। इस प्रकार के कार्यों से आपका हृदय शुद्ध हो जाएगा तथा आप सभी प्राणियों में एकता का अनुभव करने लगेंगे। तब आप गुलाब के साथ मुस्करायेंगे, वृक्षों, सरिताओं तथा पर्वतों के साथ बातें करेंगे। यदि निष्काम भाव से एक भी शुभ काम कर लें, तो इससे आपका हृदय शुद्ध होगा तथा मन ईश्वर की ओर मुड़ेगा। आप ईश्वरीय ज्योति तथा कृपा की प्राप्ति के अधिकारी बन जाएँगे।

हृदय के मलों को दूर किए बिना कमरे में आँख बन्द कर पद्मासन लगाकर ध्यान करने से आप समाधि नहीं प्राप्त कर सकते। आप हवाई किले बनाने लगेंगे अथवा आप तन्द्रा अवस्था में रहेंगे। नौसिखिये साधक इन अवस्थाओं को ही भ्रमवश समाधि मान बैठते हैं। यह भारी भूल है। यदि कोई व्यक्ति आधे घण्टे के लिए भी गम्भीरतापूर्वक ध्यान कर ले, तो वह महान् योगी हो जाए। वह हजारों में

शक्ति, आनन्द तथा शान्ति का संचार करने लगेगा।

सच्चा वेदान्ती, जो सब के साथ एकता का भान करता है, अपने लिए एक प्याला दूध भी नहीं रख सकता। जो कुछ भी उसके पास है, उसमें वह दूसरों को भी हिस्सा देगा। पहले वह इसका पता लगा लेगा कि किसी बीमार आदमी को दूध की जरूरत तो नहीं है। वह दौड़ता हुआ वहाँ जाएगा तथा तुरन्त उसे दूध देगा और ऐसी सेवा में सुख का अनुभव करेगा। आजकल अवकाश प्राप्त लोग गंगा के तट पर निवास करते हैं। वे वेदान्त की कुछ

पुस्तकें पढ़ लेते हैं तथा सोचते हैं कि अब जीवन्मुक्त अवस्था प्राप्त हो गई है। वे अपने लिए सारा धन व्यय करते हैं और बाकी को अपने पुत्रों के पास भेज देते हैं। उनके हृदय का विकास नहीं हुआ है। वे दूसरों के लिए सहानुभूति नहीं रखते। आध्यात्मिक मार्ग में उनकी रंच मात्र भी उन्नति नहीं हुई है, क्योंकि उनमें हृदय की विशालता या उदार वृत्ति नहीं है। वे उसी अवस्था में रहते हैं, जिस अवस्था में वे पन्द्रह वर्ष पूर्व थे। यह खेद की बात है। उन्हें एक वर्ष तक भिक्षा पर ही रहना चाहिए और अपनी सारी पेंशन से गरीबों की सेवा करनी चाहिए। वे एक वर्ष में ही आत्म-साक्षात्कार प्राप्त कर लेंगे। शीतकाल में दो मास तक उन्हें निर्धन की भाँति भ्रमण करना चाहिए। वे नम्र, कारुणिक तथा अधिक उदार बन जाएँगे। उनमें संकल्प-शक्ति तथा सहनशीलता का विकास होगा। अपने भ्रमणकाल में वे ईश्वरीय कृपा के रहस्यों को समझ पायेंगे। ईश्वर में उनकी श्रद्धा दृढ़ हो जाएगी। वे भूख की ज्वाला तथा कंपकंपाती ठण्ढ का अनुभव करेंगे। अब वे समझ सकेंगे कि गरीब लोगों को कितना दु:ख होता है। वे गरीबों को कम्बल बाँटेंगे तथा भूखों को अन्न देंगे, क्योंकि उन्हे उनके दु:खों का ज्ञान रहेगा।

आप अपना समय गँवा रहे हैं। आप अन्तर्निरीक्षण का अभ्यास नहीं करते। आप सबेरे उठते, चाय पीते तथा अपने वस्त्रों को पहन कर कार्यालय चले जाते हैं। आप क्लबों में जाते, सायंकाल को गप्पें लगाते, ताश खेलते, सिनेमा जाते और सबेरे आठ बजे तक खर्राटे लगाते रहते हैं। इस प्रकार आपके जीवन का अपव्यय होता है। आप जप तथा ध्यान का अभ्यास नहीं कर रहे हैं। आप नहीं जानते कि कौन-सी वृत्ति आपको कष्ट दे रही है, कौन-सा गुण किसी विशेष समय में प्रधानता को प्राप्त है? आप मनोविज्ञान, ब्रह्म-विचार, आत्म-चिन्तन अथवा ब्रह्मनिष्ठा के विषय में कुछ भी नहीं जानते। आप महात्माओं का सत्संग नहीं करते। आपके जीवन का कुछ भी कार्यक्रम नहीं है। सेवा-निवृत्ति के बाद भी आप राज्य में नौकरी कर लेते हैं, क्योंकि आध्यात्मिक साधना में समय लगाने की कला आपको मालूम नहीं है। आपको मनन एवं विचार का ज्ञान ही नहीं है, क्योंकि अपनी युवावस्था में आपने आध्यात्मिक अनुशासनों का पालन किया नहीं। आपने व्यर्थ ही जीवन बिताया है, केवल जेब तथा पेट भरने के लिए।

वेदान्तियों के लिए भी संकीर्त्तन बड़ा सहायक है। मन के थक जाने पर संकीर्त्तन उसमें नई स्फूर्ति तथा प्रेरणा भरेगा। संकीर्त्तन मन को आराम पहुँचाता, उन्नत करता तथा ध्यान के लिए तैयार करता है। जब मन ध्यान करने से उचट जाए, तो संकीर्त्तन उसे पुन: लक्ष्य पर लगा देगा। जो ध्यान का अभ्यास करते हैं, वही इसे समझ सकते हैं।

क्या आप चौबीसों घण्टे ध्यान कर सकते हैं? निश्चय ही नहीं। तब आप चौबीस घण्टे किस तरह बिताने जा रहे हैं? ध्यान के नाम पर तामसिक न बन जाइए। जब

मन भटकने लगे, जब एकाग्रता का अभ्यास कठिन हो जाए तो कमरे के बाहर निकल आइए तथा कुछ उपयोगी सेवा में निरत हो जाइए। सेवा करते समय भी ध्यान के प्रवाह को बनाए रखिए अथवा कुछ मानसिक जप कर लीजिए। ध्यान आपको प्रसन्न, अन्तर्मुखी, चिन्तनशील, बलवान, शान्त, स्फूर्तिमान तथा प्रखर बनायेगा। यदि आप में इन गुणों का अभाव है, तो निश्चय ही आपके ध्यान में कुछ कमी है। सम्भवत: आप सतत् ध्यान योग के अधिकारी नहीं हैं। आपको ध्यान के साथ-साथ कर्म योग का समन्वय करना होगा। तभी आपकी प्रगति होगी।

पक्षी दो पंखों के बिना उड़ नहीं सकता। दो पंख होने पर भी यदि पूंछ न हो, तो वह उड़ नहीं सकता। पूंछ पक्षी को सन्तुलित रखती तथा उसकी ठीक दिशा को निर्धारित करती है। यह उसे गिरने से बचाती है। दो पंख कर्म तथा ज्ञान हैं, तथा इन पंखों को सन्तुलित रखने वाली पूंछ भक्ति है। कर्म, भक्ति तथा ज्ञान परिपूर्णता की प्राप्ति के लिए आवश्यक हैं। इनसे हाथ, हृदय और सिर का विकास होगा। आप अपने लक्ष्य तक पहुंच सकेंगे।

क्या आपने शिव-परिवार का चित्र देखा है? केन्द्र में माँ पार्वती हैं। उनके अगल-बगल गणेश जी तथा कार्तिकेय आसीन हैं। गणेश ज्ञान के ईश्वर हैं। कार्तिकेय देवताओं के सेनाधीश हैं। माँ पार्वती भक्ति हैं। इस चित्र से आपको आध्यात्मिक शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। यह चित्र यही शिक्षा देता है कि समन्वय-योग के अभ्यास से ही आप पूर्णता की प्राप्ति कर सकते हैं।

भगवान कृष्ण समन्वय-योग में पारंगत हैं। वे सारथी हैं, राजनीतिज्ञ हैं, संगीत-सम्राट् हैं, रासलीला के निपुण नर्त्तक हैं, महान् योद्धा हैं। वे कहते हैं, 'इन तीनों लोकों में ऐसा कुछ भी नहीं जो मेरा कर्त्तव्य हो। न तो कोई अप्राप्य वस्तु ही है जिसे मुझे प्राप्त करना है, फिर भी मैं कर्म में संलग्न रहता हूँ।' श्री शंकराचार्य, ईसा मसीह, भगवान बुद्ध – ये सभी समन्वय-योग में निपुण थे। श्री अरविन्द, महात्मा गाँधी, साधु वासवानी इत्यादि सभी समन्वय-योग का अभ्यास करते थे।

समन्वय-योग के अंतर्गत ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, राजयोग, हठयोग आदि योगांग आते हैं। ज्ञानयोग का मूल साधना-चतुष्टय में है, इसमें ब्रह्मज्ञान का फूल लगता है तथा मोक्ष या कैवल्य के फल की प्राप्ति होती है। भक्तियोग का मूल श्रद्धा या आत्मार्पण में है, प्रेम का पुष्प खिलता है तथा ईश्वर-प्राप्ति या भाव-समाधि का फल लगता है। राजयोग का मूल यम तथा नियम में है, एकाग्रचित्त का फूल लगता है तथा असंप्रज्ञात या निर्विकल्प समाधि का फल लगता है। कर्मयोग का मूल है आत्म-त्याग, चित्ताशुद्धि तथा चित्त-विशालता हैं फूल और ब्रह्मज्ञान का फल लगता है। सत्य तथा ब्रह्मचर्य कुंडलिनी योग के मूल हैं, जगज्जननी माता की कृपा फूल है तथा शिव-योग की प्राप्ति फल है। आसन तथा प्राणायाम हठयोग के मूल हैं, विश्रान्ति फूल है, कायसंपत, दीर्घायु तथा कुंडलिनी-जागृति के फल लगते हैं।

ध्यानयोग पर विहंगम दृष्टि

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

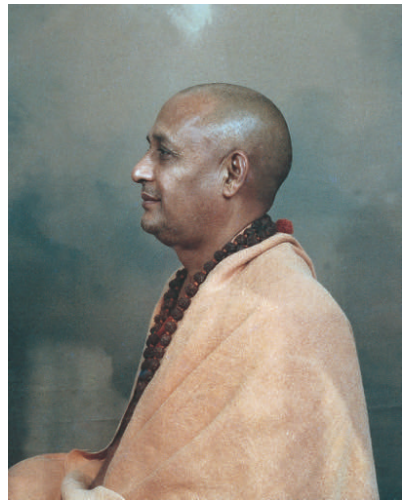

विगत पचास वर्षों में योग ने मानवता को महान् संकटों से उबारा है। योगाभ्यास द्वारा विश्व में बड़े परिवर्तन हुए हैं। यद्यपि हठयोग लोगों में योग के अन्य अंगों की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय हुआ है, तथापि बहुत कम लोग ध्यानयोग की ओर प्रवृत्त हुए हैं। ध्यानयोग, योग का मेरुदण्ड कहा जा सकता है। ध्यानयोग मानव के भविष्य और प्रारब्ध के निर्माण में अहम् भूमिका निभाएगा।

मेरा विश्वास है कि आप ध्यानयोग के विषय में कुछ-न-कुछ अवश्य जानते होंगे। ध्यान के लिये अंग्रेजी में 'मेडिटेशन' शब्द प्रयुक्त होता है। ध्यानयोग को समग्र चेतना का योग कहा जाता है। जब आपका मन किसी विषय पर एकाग्रतापूर्वक चिन्तन करता है, तो उस अवस्था को ध्यान कहते हैं। मनुष्य का मन इतना चंचल और विक्षिप्त रहता है कि वह किसी भी वस्तु को उसके समग्र रूप में नहीं पकड़ सकता। ध्यान कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो पलक झपकते सिद्ध हो सके। इसके लिए वर्षों तक नियमित रूप से प्रतिदिन अभ्यास करना पड़ता है।

ध्यान में क्या होता है? क्या आप ध्यान में अपने जीवन को विस्मृत कर देते हैं? क्या आप यथार्थ से पलायन करते हैं? अथवा, क्या आप ध्यान में होश खो बैठते हैं? अनेक ऋषियों, मनीषियों तथा आधुनिक वैज्ञानिकों का यह अनुभूत निष्कर्ष है कि ध्यान की अवस्था में ध्याता के मन का महान् रूपान्तरण होता है। आगे चलकर यही रूपान्तरण उसकी चेतना के उत्थान में सहायक होता है।

आप अपने बच्चों को स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय भेजते हैं, ताकि उनका बौद्धिक विकास हो सके, परन्तु आप अपनी मानसिक क्षमता को कुशाग्र करने के निमित्त क्या करते हैं? आज हममें से अनेक लोग अपने जीवन में बड़ी उथल-पुथल का सामना कर रहे हैं क्योंकि हमारा जीवन सम्बन्धी ज्ञान अपर्याप्त, एकांगी है। यदि आप किसी एस्किमो जाति के ग्रामीण को जर्मनी के किसी महानगर में लाकर छोड़ दें, तो वह वहाँ के जीवन के साथ सामंजस्य स्थापित नहीं कर पायेगा

और संभवत: शहर के किसी व्यस्त मार्ग पर दुर्घटना का शिकार हो जायेगा। ठीक इसी प्रकार हमारा अप्रशिक्षित मन भी आधुनिक जीवन के कटु यथार्थों का सामना करने में असमर्थ होता है।

आधुनिक सभ्यता ने हमें सभी सुख-सुविधा दी है, परन्तु हमारा मन उनका समुचित, लाभदायक उपयोग नहीं कर पाता। सजे-धजे भव्य भवनों में आरामदायक बिस्तरों पर हम पूरी रात बेचैनी से करवटें बदलते हुए गुजारते हैं। सुन्दर पत्नी तथा प्यारे बच्चों के साथ आप परेशानी तथा भययुक्त जीवन जी रहे हैं। अच्छा खासा बैंक-बैलेंस तथा जीवन के समस्त आमोद-प्रमोद के बीच आप अतृप्त जीवन जीते हैं। क्या यह सब कुछ असमर्थ तथा रुग्ण मन का परिणाम नहीं है? आपकी जेब में सब कुछ है, परन्तु आप कुछ भी उपयोग नहीं कर पाते। इसका सीधा कारण यह है कि आपका मन जीवन की विविध परिस्थितियों से नहीं निपट सकता। यही कारण है कि आज विश्व में लाखों-करोड़ों लोग दु:खी हैं।

मनुष्य के दु:खों का कारण सामाजिक अथवा आर्थिक नहीं है। उसके दु:खी होने का कारण उसका अपना बीमार मन है। यदि आप दु:खी हैं तो यह समझिए कि आपके मन का आमूल रूपान्तरण और उपचार आवश्यक है, और इस कार्य के लिए केवल ध्यानयोग ही रामबाण युक्ति है। हमेशा यह स्मरण रखिये कि ध्यान निष्क्रिय नहीं, अपितु एक गत्यात्मक प्रक्रिया है और केवल गत्यात्मक प्रक्रिया ही मन में परिवर्तन ला सकती है। इससे मन अधिक सक्षम, मजबूत और सामंजस्यपूर्ण होता है। अब प्रश्न यह उठता है कि ध्यान कैसे करें?

ध्यान का आरम्भ शरीर की तैयारी से होता है। इसके अन्तर्गत तंत्रिका-तंत्र, हृदय, श्वसन-संस्थान और मस्तिष्क आदि सबकी तैयारी आवश्यक है। शरीर की तैयारी के निमित्त हठयोग का अभ्यास करना चाहिए। हठयोग को मात्र शारीरिक व्यायाम समझना भूल है। हठयोग वह अचूक युक्ति है जिसके द्वारा हमारे अनुकंपी तथा परानुकंपी तंत्रिका-तंत्रों में स्वस्थ संतुलन आता है। इसके अतिरिक्त आसन, प्राणायाम, मुद्रा तथा बंध के नियमित अभ्यास द्वारा ध्यानयोग की तैयारी पूर्ण होती है।

ध्यान मात्र मानसिक क्रिया नहीं है। यह शरीर को प्रभावित करता है। इसका प्रभाव हृदय, पाचन-संस्थान, हॉर्मोन-समूह तथा एंडोक्राइन ग्रन्थियों पर भी पड़ता है। यह भी देखा गया है कि ध्यान में मस्तिष्क की तरंगों का स्वरूप बदलता है।

ध्यान का प्रमुख लाभ यह है कि इससे मस्तिष्क के निष्क्रिय तथा अर्द्धसुप्त केन्द्र जागते तथा सक्रिय होते हैं। निश्चय ही प्रत्येक व्यक्ति का लक्ष्य अपने मस्तिष्क के अज्ञात निष्क्रिय खंडों को सक्रिय बनाना तथा आलोकित करना है, ताकि वह पूरी जानकारी और सजगता के साथ जीवन का आनन्द और सुख का उपभोग कर सके। ध्यान का सबसे सरल तरीका यह है कि अपने भीतर किसी वस्तु के

प्रति पूरी तरह सजग हो जाइये। इससे समूचा मस्तिष्क क्रियाशील हो जाता है। इस प्रकार ध्यानयोग का लक्ष्य मानव की समग्र चेतना का विकास करना है।

क्या ध्यान खतरनाक है?

ध्यान अत्यन्त कल्याणकारी एवं खतरों से रहित प्रक्रिया है। मानवता के लिये इससे बढ़कर उपकारी और कोई वस्तु नहीं हो सकती। विश्व के प्रत्येक धर्म और संस्कृति में ध्यान का उल्लेख हुआ है। भले ही उसके लिए प्रयुक्त नाम भिन्न क्यों न हों। हिन्दू इसे ध्यान और बौद्ध 'झान' कहते हैं। यही शब्द चीन में 'चुआन' और जापान में 'ज़ेन' नाम से विख्यात हुआ। ईसाई धर्मावलम्बी इसे प्रार्थना कहते हैं। आजकल लोग चेतना, साक्षी, मनन तथा चिन्तन के परिप्रेक्ष्य में भी ध्यान शब्द प्रयुक्त करते हैं।

ध्यान की प्रक्रिया बिल्कुल जटिल नहीं है। हर व्यक्ति ध्यान की युक्ति जानता है, भले ही वह उसके प्रति सचेत न हो। हर रात जब आप गहन निद्रा में होते हैं, तो संसार के अस्तित्व तथा दु:ख-दर्दों का आपके लिए कोई अस्तित्व नहीं रहता। आपकी वासनाएँ, भावनाएँ, देश, काल, अहम् और द्वैत आदि सबके सब थम जाते हैं। ध्यान में भी इनका अस्तित्व नहीं होता। परन्तु ध्यान और निद्रा में एक बहुत बड़ा अन्तर होता है। निद्रावस्था में हम अचेतन रहते हैं। हममें आत्मसजगता नहीं रहती है। ध्यान की अवस्था में हम पूरी तरह सजग रहते हैं। यदि किसी प्रकार आप निद्रावस्था में भी सजगता को बनाये रख सकें तो आपकी निद्रा भी ध्यानयोग हो सकती है। अत: यह कैसे कहा जा सकता है कि ध्यान का अभ्यास खतरनाक है।

यदि ध्यान खतरनाक है तो फिर निद्रा कैसे निरापद हो सकती है? ऐसी स्थिति में तो आज से सोना बन्द कर दीजिये। आजकल के लोग बड़े विचित्र विचार रखते हैं। उनके लिए ध्यान, कुण्डलिनी योग, प्राणायाम और शीर्षासन आदि सभी आफत लाने वाली क्रियाएँ होती हैं, परन्तु सिगरेट, शराब और अन्य मादक द्रव्य खतरनाक नहीं होते। यह बड़े खेद की बात है कि व्यक्ति का नकारात्मक मन ऐसी बातें सोचता है।

मानवता के लिए ध्यान एक बड़ा महत्त्वपूर्ण विज्ञान है। यदि कोई वस्तु मनुष्य को पशु से पृथक् कर सकती है तो वह केवल ध्यान है, क्योंकि ध्यानाभ्यास चेतना के उत्थान को तीव्र गति प्रदान करता है। वैज्ञानिक अनुसंधानों से यह पता चला है कि जब हम ध्यान में बैठते हैं तब हमारे सामने का बृहत् मस्तिष्क सक्रिय तथा लघु मस्तिष्क प्रसुप्तावस्था में रहता है। लघु मस्तिष्क का सम्बन्ध पशु स्वरूप से है जो हमारी सहज वृत्तियों का स्थान है। मध्य मस्तिष्क का बुद्धि और तर्क से तथा सामने के बृहत् मस्तिष्क का सहजबोध से सम्बन्ध होता है। अधिकतर लोग अपने लघु मस्तिष्क के द्वारा ही प्रेरित और संचालित होते हैं।

इसी प्रकार श्वास-प्रश्वास की भी दो विधियाँ हैं – पहली विधि में श्वास-प्रश्वास अपने आप होती है तथा हम उस पर ध्यान नहीं देते। दूसरी विधि में हम संपूर्ण चेतना के साथ श्वास-प्रश्वास करते हैं। बहुधा जब हम आकाश की ओर देखते हैं तो यह नहीं जानते कि हम आकाश की ओर देख रहे हैं। इसी प्रकार अधिकांश समय हम सोचते रहते हैं, परन्तु यह नहीं जानते कि हम सोच रहे हैं। हम शारीरिक हरकतें भी करते हैं, परन्तु उनसे बेखबर रहते हैं। हमारी ये सभी क्रियाएँ स्वत: होती हैं। यह पाशविक व्यवहार हमें विरासत में मिला है। चूँकि हम मनुष्य योनि में हैं, इसलिए हमें अपनी समस्त शारीरिक और मानसिक क्रियाओं के प्रति सजग रहना चाहिए। जब अपने भीतर और बाहर होने वाली समस्त घटनाओं को आप देखते और समझते हैं, तो इसका तात्पर्य यह है कि आपका सामने वाला बृहत् मस्तिष्क विकसित हो रहा है, और इसके साथ ही आप अपने पाशविक मस्तिष्क से परे जा रहे हैं।

ध्यान सजगता का अभ्यास है। जब आप इस अभ्यास में पूर्णता प्राप्त कर लेते हैं और आपकी सजगता निरन्तर और अखण्ड बनी रहती है, तो ध्यान समाधि में परिणत होता है। मानव चेतना के विकास में अग्र मस्तिष्क का जागरण महत्त्वपूर्ण है। जब आप ध्यानयोग का अभ्यास करते हैं तो जागरण की प्रक्रिया अग्र मस्तिष्क क्षेत्र में घटित होती है। हम ध्यानयोग में भ्रूमध्य पर एकाग्रता का अभ्यास करने पर बल देते हैं, क्योंकि भ्रूमध्य तृतीय नेत्र कहलाता है।

यह तृतीय नेत्र सहजबोध का प्रतिनिधित्व करता है। दूसरा नेत्र बुद्धि और विचारप्रक्रिया का तथा पहला नेत्र सहज वृत्ति और अपने आप होने वाली क्रियाओं का प्रतीक है। पशु प्रथम नेत्र, मनुष्य द्वितीय नेत्र तथा योगी तृतीय नेत्र द्वारा प्रेरित होते हैं। क्रमविकास के प्रमुख लक्ष्यों में से एक है तीसरे नेत्र को खोलना।

जब आप खुले अथवा बन्द नेत्रों से भ्रूमध्य पर मन को एकाग्र करते हैं तो वहाँ एक छोटे-से प्रकाश पुंज के दर्शन होते हैं। जब इस प्रकाश पुंज पर चेतना एकाग्र हो जाती है तो शरीरगत प्राण धीरे-धीरे भ्रूमध्य में एकत्र हो जाते हैं और आत्मसाक्षात्कार होता है। इसलिए आपको नियमित रूप से ध्यान का अभ्यास करना चाहिए।

यदि ध्यान से कोई नुकसान होता है तो वह मात्र इतना ही कि नियमित अभ्यास से आपके मानसिक अवरोध, त्रुटियाँ और लगाव समाप्त हो जाते हैं। आप स्वयं को कहीं अधिक चतुर, बुद्धिमान और प्रखर पाते हैं; यह भी कि सरकार, समाज, धर्म, मित्र अथवा रिश्तेदार आपका अनुचित शोषण नहीं कर सकते। यदि ध्यान से कोई खतरा है तो वह मात्र इतना है कि ध्यान करने वाला व्यक्ति आत्मनिर्भर होता है। उसे प्रेम, घृणा, धन, संपत्ति अथवा सुरक्षा पर निर्भर नहीं रहना पड़ता। ऐसी कोई भी वस्तु नहीं होती जिसके बिना उसका काम न चल पाये। ध्यानाभ्यासी चूँकि निर्भय होते हैं, स्वयं में सुरक्षा का अनुभव करते हैं। यदि आप इस यथार्थ को जानना चाहते हैं तो नियमित रूप से ध्यान का अभ्यास कीजिये।

ऐसे लोग जो हमें वासनाओं का गुलाम बनाये रखना चाहते हैं, हमारा शोषण करना चाहते हैं, वे ही कहते हैं कि ध्यान खतरनाक है। बहुधा गृहस्थ जीवन में यह देखा जाता है कि यदि पति अथवा पत्नी में से कोई ध्यान का अभ्यास करता है तो दूसरा उसे ध्यान न करने के लिए मजबूर करता है। ऐसा क्यों? संभवत: वे सोचते हैं कि उनमें से जो भी ध्यान करता है, वह अपने साथी से प्यार करना बन्द कर देगा। परन्तु ऐसी बात नहीं है। आप अपने जीवन के भोग-विलास अथवा अपने परम प्रिय साथी अथवा रिश्तेदार से वंचित होते हैं, तो यह कोई बड़ा नुकसान नहीं है। इतना ही नहीं, यदि आप दुनियाभर की समस्त वस्तुओं से भी वंचित हो जाते हैं तो भी यह कोई बड़ा नुकसान नहीं है। परन्तु याद रखिये, यदि आप अपने भीतर के प्रकाशपुंज को खो बैठते हैं तो दुनिया के सभी नुकसान उसके सामने छोटे होंगे।

यदि अनन्त भवसागर में वह प्रकाशपुंज आपकी दृष्टि से ओझल हो जाता है तो आपका पतन निश्चित है। मनुष्य को लक्ष्यविहीन नहीं होना चाहिए, परन्तु इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है प्रकाशपुंज का होना। मनुष्य किस रास्ते पर आगे बढ़े? हमारे सामने दो बिन्दु स्पष्ट दिखलाई देते हैं – एक मन और इन्द्रियों का संसार है, और दूसरा, हमारा एकान्त अन्तर है। जब आप इन्द्रिय व्यापारों के गहन वन में घुसते हैं तो आपकी शक्तियाँ न केवल बिखरती हैं अपितु आप उद्वेलित, उदास तथा तनावपूर्ण हो जाते हैं। परन्तु जब आप अपनी चेतना के शान्त प्रदेश तथा अपने अन्त:करण में प्रवेश करते हैं तो वहाँ आप अत्यधिक शान्ति का अनुभव करते हैं। बुद्धिमान् व्यक्ति शान्ति के लिए किसी भी वस्तु का त्याग कर सकता है, भोग-विलास के लिए वह किसी वस्तु का विनिमय नहीं करता।

भावना का परिष्कार

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

योग में हृदय की अवधारणा दो इकाइयों को इंगित करती है – एक है स्थूल और दूसरी सूक्ष्म। जहाँ स्थूल हृदय भौतिक शरीर के भरण-पोषण के लिए उत्तरदायी है, वहीं सूक्ष्म हृदय सम्पूर्ण जीवन के प्रबन्धन के लिए। योग हृदय के गुणों और अभिव्यक्तियों को इसी परिप्रेक्ष्य में देखता है।

भावना के रंग

योग में जब हृदय शब्द का उपयोग होता है तब उसका तात्पर्य शारीरिक अंग से नहीं, बल्कि उस सूक्ष्म केन्द्र से होता है जहाँ से सकारात्मक तथा नकारात्मक, दोनों प्रकार की भावनाएँ उपजती हैं। भावनाएँ यहाँ अपने मूल रूप में होती हैं। जो भावना महत् अर्थात् अहंकार, बुद्धि, चित्त और मनस् के स्तर तक पहुँचती है, वह रूपान्तरित भावना होती है। वह भावना मन के उस क्षेत्र विशेष के अनुरूप कटी-छंटी रहती है, जहाँ विचार, इच्छाएँ और अनुभूतियाँ प्रकट होती हैं। मन में प्रतिबिम्बित होकर तुम्हारी मनोदशा को बदलने से पहले जब भावनाएँ हृदय के स्तर पर उत्पन्न होती हैं, उनका स्वरूप प्रबल, अपरिष्कृत ऊर्जा का रहता है। वह ऊर्जा इतनी प्रबल होती है कि वह तुम्हें अपने साथ बहा ले जा सकती है। वह भावना अपनी विषय-वस्तु के अलावा अन्य सभी चीजों को विस्मृत करा देती है। क्रोध, आकर्षण, ईर्ष्या, द्वेष – सभी उस अपरिष्कृत ऊर्जा की अभिव्यक्तियाँ हैं। भावना के संदर्भ में योग मन और हृदय को भिन्न इकाइयों के रूप में देखता है। बहिर्मुखी भावनाओं को अन्तरात्मा की ओर प्रवाहित करने में हृदय की कहीं अधिक भूमिका रहती है।

जब हृदय बाह्य परिवेश के सम्पर्क में आता है, तब इन्द्रिय-विषयों के संसर्ग से उसमें कुछ प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न होती हैं। श्री स्वामीजी कहते हैं कि भावनाएँ अपने मूल रूप में पूर्णतया शुद्ध होती हैं। वे शुद्ध ऊर्जा हैं, भौतिक अभिलाषाओं और आकांक्षाओं से पूर्णतया अप्रभावित। अपने मूल रूप में वे एक स्फटिक-खण्ड के समान होती हैं – साफ, पारदर्शी और रंगहीन। लेकिन जब उसी स्फटिक-खण्ड को किसी वस्तु पर रख देते हो तो क्या हो जाता है? अगर उसे लाल कपड़े पर रखते हो तो उसमें लाल रंग दिखाई देता है। उसे काले कपड़े पर रखते हो तो काला रंग और नीले कपड़े पर रखते हो तो नीला रंग झलकता है। स्फटिक का अपना तो कोई रंग है नहीं, पर जिस किसी वस्तु पर वह रखा जाता है उसी का रंग ग्रहण कर लेता है। यही बात हमारी भावनाओं पर भी लागू होती है। मूलत: वे रंगहीन हैं, पर जब किसी घटना, विचार या वस्तु के सम्पर्क में आती हैं, तब

उसी का रंग ग्रहण कर लेती हैं और वह रंग फिर हमारे मानसिक व्यवहार को प्रभावित करने लगता है।

मान लो तुम सड़क पर चल रहे हो और अचानक तुम्हारी नजर सड़क के किनारे पड़ी रुपयों से भरी एक थैली पर पड़ती है। तुम उसकी उपेक्षा नहीं कर सकोगे। जब तुम उस लावारिस रुपयों की थैली को देखते हो तब कौन-सी भावना तुम्हारे अन्दर जागती है? लोभ की। जब तक तुमने रुपयों की उस थैली को नहीं देखा, लोभ का अस्तित्व नहीं था। जिस क्षण तुमने उसे देखा, मन और हृदय में एक प्रतिक्रिया हुई। मन कहता है, 'इसे ले लो, लावारिस ही तो पड़ा है' और हृदय की भावनात्मक ऊर्जा लोभ का रूप ले लेती है।

एक छोटे शिशु को देखकर किस भावना का उदय होता है? स्नेह की भावना स्वाभाविक रूप से प्रकट होती है। हमें उस भाव को बलपूर्वक लाना नहीं पड़ता।

उसी प्रकार जब तुम किसी अप्रिय वस्तु या व्यक्ति को देखते हो, तब स्वाभाविक प्रतिक्रिया अस्वीकृति और द्वेष की होती है। जब अपने प्रेमी को देखते हो, तब स्वाभाविक प्रतिक्रिया आकर्षण और वासना की होती है।

जैसे-जैसे मन अपने वातावरण के भिन्न-भिन्न इन्द्रिय-विषयों के सम्पर्क में आता है, वैसे-वैसे विशेष भावनात्मक प्रतिक्रियाओं का अनुभव होता है। भावनाएँ विभिन्न रंग धारण करती जाती हैं, हालाँकि अपनी स्वाभाविक अवस्था में वे वर्णहीन ही होती हैं।

भावनाओं का दिशान्तरण

हृदय के सकारात्मक और सात्त्विक गुणों की जागृति का उपाय है – बहिर्मुखी भावनाओं को अन्तरात्मा की ओर दिशान्तरित करना। जब भावनाएँ बहिर्मुखी होती हैं तब उनसे हमेशा नकारात्मक या स्वार्थपरक प्रतिक्रिया होती है। इसके विपरीत जब भावनाएँ आत्मोन्मुखी होती हैं, तब प्रतिक्रिया संतुलित एवं सामंजस्यपूर्ण होती है और विवेक द्वारा निर्दिष्ट होती है।

जब भावनाएँ समन्वित और शान्त हो जाती हैं तब मन सद्गुणों को आत्मसात् करने की दिशा में अपने आप प्रवृत्त होता है। वह शुभ, सकारात्मक, रचनात्मक और सृजनात्मक प्रतिभाओं को हृदयंगम करता है। उदात्त भावनाएँ उस समय जीवन में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। भावनाओं को समझने, संभालने और दिशान्तरित करने की यह विधि भक्ति योग में समझायी गई है।

भक्ति मार्ग और भक्ति योग

भक्ति को दो रूपों में देखा जाता है। पहला है भक्ति मार्ग, और दूसरा, भक्ति योग। भक्ति मार्ग कर्म-काण्ड और विधि-विधान युक्त मार्ग है, जिसे विभिन्न धर्मों ने प्रार्थना, पूजा, आराधना, मंत्र जप आदि के रूप में अपनाया है। भारतीय चिन्तन परम्परा भक्ति मार्ग और भक्ति योग में विभेद करती है और हमारे शास्त्र इस भेद को स्पष्ट रूप से समझाते हैं। श्रीमद्भागवत में भक्ति मार्ग को नवधा भक्ति के रूप में बताया गया है –

श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन और वन्दन, ये छः चरण बाह्य विधियाँ हैं जिनके द्वारा व्यक्ति दिव्यता के स्रोत से जुड़ पाता है। ये विधियाँ अपने आराध्य से एक आन्तरिक सम्बन्ध विकसित करने में सहायक होती हैं, जिसका अनुभव सातवें और आठवें चरण में होता है। अन्ततः नौवें चरण में पूर्ण आत्म-समर्पण सिद्ध होता है।

दूसरी ओर, भक्ति योग वह मार्ग है जिसमें तुम अपनी भावनाओं का अवलोकन, दिशान्तरण और परिष्कार करते हो। भावनाओं को रूपान्तरित करके उनमें स्थिरता लानी है। योगीजन कहते हैं कि भक्ति को सिद्ध करने के लिए तुम्हें अपने जीवन और वातावरण को, अपनी मानसिक एवं भावनात्मक अभिव्यक्तियों को सुव्यवस्थित करना होगा। भक्ति योग अपनी नकारात्मक मनोवस्थाओं और व्यवहारों का अवलोकन एवं रूपान्तरण करने की प्रक्रिया है जिसके द्वारा तुम सही और गलत के बीच विभेद करना जान सकते हो।

भक्ति मार्ग भगवन्नाम के श्रवण और कीर्तन से प्रारम्भ होता है, जबकि भक्ति योग का पहला पड़ाव है संग। यह बात याद रखो कि भक्ति का वास्तविक प्रयोजन भावनाओं की शुद्धि से है, पर जब धर्मों ने भक्ति के विभिन्न घटकों को अपने दायरे में लिया तब उन्हें भक्ति को एक बाह्य कर्मकाण्ड का रूप देना पड़ा जो मनुष्य को अपने आराध्य से जोड़ता है। इसलिए भक्ति मार्ग में माला जपना, प्रार्थना करना, मंत्रों-स्तोत्रों द्वारा देवताओं की स्तुति करना आदि अनेक बाह्य कर्मकाण्ड इस भाव से किये जाते हैं कि 'मैं भगवान से जुड़ रहा हूँ।' भगवान के साथ यह एक धार्मिक सम्बन्ध है। भक्त पूजा-स्थल और पूजा-पद्धति से तादात्म्य स्थापित कर उन्हें अपनी श्रद्धा अर्पित करने का माध्यम बना लेता है। ऐसी भक्ति धार्मिक है, यौगिक नहीं।

श्री राम द्वारा नवधा भक्ति की शिक्षा

यौगिक भक्ति व्यक्तित्व-रूपान्तरण की प्रक्रिया है। रामचरितमानस में श्री राम द्वारा यौगिक भक्ति की व्याख्या की गई है। अपने सीमित व्यक्तित्व के अतिक्रमण को श्री राम भक्ति कहते हैं। अपने उपदेश में वे कहते हैं कि अपने संगों-सम्बन्धों को परखना भक्ति सिद्ध करने का प्रथम सोपान है।

अगर तुम सज्जनों और सत्पुरुषों की संगत करते हो तो कालक्रम में तुम भी उनके जैसे सद्गुण आत्मसात् कर लोगे। अगर तुम नकारात्मक व्यक्तियों का संग करते हो, तो उनके विचार और भावनाएँ ग्रहण कर तुम स्वयं नकारात्मक बन जाओगे। इसलिए जीवन में अच्छे, सद्गुण-सम्पन्न और सत्कर्मी व्यक्तियों का संग करो जो तुम्हें प्रेरित और उत्साहित कर सकें। भक्ति सिद्ध करने की यह पहली शर्त्त श्री राम माता शबरी को बताते हैं। 'प्रथम भगति संतन्ह कर संगा' – मन, वचन और कर्म से पवित्र बनने हेतु पवित्र व्यक्तियों का संग करो।

'दूसरि रति मम कथा प्रसंगा', अर्थात् दूसरा चरण है मेरी कथाओं से प्रेम। यह श्री राम द्वारा बतलाई अगली शर्त्त है। अक्सर लोग अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित करने के लिए अनावश्यक वाद-विवाद और बहस में अपना समय नष्ट कर देते हैं। 'मैं सही हूँ और तुम गलत हो', उनका यही भाव रहता है। आलोचना, गप्पबाजी और इधर-उधर की अनर्गल बातें पूर्णतया निरर्थक और निष्फल होती हैं। उनसे न तो कोई प्रेरणा मिलती है, न ही अपनी ऊर्जा को ऊर्ध्वगामी बनाने की विधि ही प्राप्त होती है। इसलिए अपने कीमती समय का उपयोग परमात्मा के बारे में अध्ययन, चिन्तन, चर्चा और अनुभव करने में करो। उपन्यास के बदले शास्त्र पढ़ो। उपन्यास मात्र मानसिक मनोरंजन करते हैं, पर अगर तुम सद्ग्रन्थों का अध्ययन करोगे तो ऐसी शिक्षा और प्रेरणा मिलेगी जिससे तुम्हारे जीवन का उत्थान होगा।

अगर तुम ईश्वर, सृष्टि और संसार की प्रकृति और गुणों का अध्ययन करोगे, तो तुम जीवन के प्रति उचित मानसिकता और दृष्टिकोण विकसित कर पाओगे। जीवन क्रम-विकास की प्रक्रिया है, और तुम्हें इस प्रक्रिया को सहयोग देना है। जीवन व्यर्थ की गप्पबाजी या ईर्ष्या, घृणा और क्रोध जैसी तुच्छ भावनाओं में नष्ट करने के लिए नहीं मिला। जीवन का एक निश्चित उद्देश्य है, जिसे स्वयं अनुभव करना है। इसलिए ऐसे साहित्य पर चिन्तन-मनन करो जो तुम्हें स्वयं, संसार और ईश्वर के बारे में अन्तर्दृष्टि प्रदान कर सके। यह यौगिक भक्ति का दूसरा चरण है।

श्री राम द्वारा निरूपित भक्ति का तीसरा चरण है निरभिमानी और विनम्र बनना। पूर्णरूपेण अहंकार रहित होना तो सम्भव नहीं, लेकिन कम-से-कम अपने दम्भ और आन्तरिक कठोरता से तो तुम मुक्त हो ही सकते हो। दम्भी होने का तात्पर्य यह है कि तुम्हारे स्वभाव में नम्यता या लचीलापन नहीं है। आन्तरिक रूप से नम्य बनो, दम्भ की तीव्रता को कम करो। विनीत बनो।

श्री स्वामीजी बड़े ही सहज और स्वाभाविक ढंग से मुझे अनेक चीजों की शिक्षा दिया करते थे। वे मुझसे कहते, 'अगर तुम कोई काम जानते हो, और उसे बहुत बढ़िया ढंग से कर सकते हो, तो भी हमेशा यही सोचो कि तुम नहीं जानते, ताकि कर्मों में तुम्हारी पूर्ण सजगता बनी रहे।' यदि तुम सोचते हो कि तुम जानते हो, तो तुम्हारी सजगता तुम्हारे कर्म से अलग रहती है। जब सजगता कर्म से हट जाती है और कर्म अकेला रह जाता है, तब अहंकार इस रूप में प्रकट होता है – 'मैं यह काम आसानी से कर सकता हूँ।' मन के अन्दर इस प्रकार के भाव उठते हैं, 'तुम मुझे समझाने वाले कौन होते हो? तुमसे बेहतर मैं जानता हूँ।' यही अहंकार का प्रारम्भ है। श्री स्वामीजी मुझसे कहा करते थे, 'भले ही तुम सभी चीजों में माहिर हो जाओ, लेकिन अपने मन में हमेशा यही सोचो कि तुम नौसिखिये हो।' और मैंने अपने गुरु के इस निर्देश का पालन किया है। अपने गुरु के निर्देशों और शिक्षाओं का पालन करके विनम्रता का विकास करना चाहिए। जब तुम विनम्र हो जाते हो तब हृदय की नकारात्मक अभिव्यक्तियाँ स्वत: समाप्त हो जाती हैं और उनके स्थान पर सकारात्मक अभिव्यक्तियाँ प्रकट होती हैं। ईर्ष्या, लोभ और द्वेष जैसे भाव समाप्त हो जाते हैं; उनका स्थान प्रेम, करुणा, सहानुभूति और सौहार्द ले लेते हैं।

इस दृष्टि से भक्ति की यौगिक अवधारणा तुम्हारे मनोवैज्ञानिक विकास से सम्बन्धित है। भावनाओं की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए यह तुम्हारे स्वभाव का सूक्ष्म परिष्कार करती है। श्री राम द्वारा वर्णित भक्ति के यौगिक मार्ग का अनुसरण करने से हृदय की प्रतिभाओं का विकास होता है। स्वयं को इस मार्ग पर स्थापित कर लेने के बाद तुम्हारी भावनाएँ अन्तरात्मा की खोज में दिशान्तरित हो जाएँगी। जब अन्तरात्मा का साक्षात्कार होगा तब समझ में आ जाएगा कि जीवात्मा परमात्मा का ही प्रतिबिम्ब है और यही भक्ति की परिणति है।

इस भक्ति की शुरुआत अपने सम्बन्धों के विश्लेषण से होती है। सम्बन्धों के दायरे में हमारे परिवारजन, मित्रगण और समाज के वे सभी लोग आते हैं जिनसे

हमारा सम्पर्क होता है। अपने आप से पूछो कि उन लोगों से तुम किस प्रकार की बातचीत करते हो, उनसे किस प्रकार का पारस्परिक व्यवहार होता है। तुम्हें शायद यह पता चले कि ये सम्बन्ध वास्तव में तुम्हारे उत्थान में सहायक नहीं हैं, बल्कि वे तुम्हें सांसारिकता में और अधिक उलझाते हैं। अगर सचमुच ऐसा है तो तुम्हें इन नकारात्मक सम्बन्धों से अपने आप को अलग करना होगा।

महर्षि पतंजलि का संगति विषयक परामर्श

योग सूत्रों में महर्षि पतंजलि ने संगति के नियमों की चर्चा की है – *मैत्रीकरुणा-मुदितोपेक्षाणां सुखदु:खपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्।* अर्थात् सुखी, दु:खी, सदाचारी एवं दुराचारी के प्रति क्रमश: मैत्री, करुणा, प्रसन्नता और उदासीनता का मनोभाव रखने से मन शुद्ध और शान्त रहता है।

यह कथन भी इस बात पर बल देता है कि तुम्हारी संगति उपयुक्त होनी चाहिए। जो सुखी हैं, उनसे मित्रता रखो और उनका सुख तुम तक आ जायेगा, तुम उस सुख के भागीदार बनोगे। जो दु:खी हैं, चाहे शारीरिक रूप से या मानसिक रूप से, उनके प्रति करुणा का भाव रखो। जो सदाचारी और सज्जन हैं उनके प्रति प्रसन्नता का भाव रखो और उनसे सम्बन्ध जोड़ो। कुटिल, नकारात्मक और अनिष्टकारी लोगों की उपेक्षा करो, उनसे किसी प्रकार का लेना-देना मत रखो।

निष्पक्ष भाव से अपना और अपने संगी-साथियों का विश्लेषण करो और तब निर्णय लो कि किन लोगों का तुम्हारे जीवन पर सकारात्मक प्रभाव है, और किन लोगों की तुम्हारे जीवन में कोई प्रासंगिकता नहीं है। वे कौन हैं जो तुम्हें जीवन के सकारात्मक पक्षों की खोज की प्रेरणा देते हैं? वे कौन हैं जो सांसारिक भोगों और प्रपंचों में और अधिक उलझाने के लिए प्रलोभन देते हैं? मनीषियों ने तो यहाँ तक कह दिया है कि तुम्हें अपनी संगति के बारे में इस हद तक सतर्क होना चाहिए कि अगर तुम्हारा जीवनसाथी तुम्हारे लक्ष्य-प्राप्ति में सहायक नहीं तो उसका भी त्याग करने के लिए तत्पर रहो।

इस प्रकार भक्ति योग द्वारा भावनाओं के शुद्धिकरण का मार्ग प्रशस्त होता है, जिसका आरम्भ अपनी संगति और सम्बन्धों के अवलोकन और विश्लेषण से होता है।

उच्चतर प्रेम का आयाम

भक्ति योग का लक्ष्य भावनाओं की शुद्धि है। जब यह प्रयोजन सिद्ध हो जाता है, तब तुम अपने परिवेश और लोगों से जुड़ पाते हो। तुम उनकी आवश्यकताओं को अपनी आवश्यकता और अपनी उपलब्धियों को उनकी उपलब्धियाँ समझने लगते हो। तुम्हारा मन प्रत्येक व्यक्ति से जुड़ने लगता है, और तब जाकर प्रेम की

वास्तविक, शुद्ध प्रकृति स्पष्ट रूप से समझ में आती है। यह प्रेम शारीरिक, कामुक अथवा भावनात्मक नहीं, बल्कि सार्वभौमिक और अलौकिक होता है।

तुमने कथाएँ पढ़ी होंगी कि प्रबुद्ध ऋषि-मुनियों के आश्रमों में हिंसक पशु भी अपनी स्वाभाविक शत्रुता त्याग देते थे। जिस स्थान पर कोई सिद्ध पुरुष साधना और तपस्या करता है, वहाँ बाघ और बकरी एक ही घाट पर पानी पीते हैं। उस पवित्र वातावरण के प्रभाव से पशु अपना स्वभाव भूल जाते हैं। वहाँ व्याप्त करुणा और प्रेम की भावना इतनी प्रगाढ़ होती है कि हिंसक प्रवृत्तियाँ विस्मृत हो जाती हैं। किसी महात्मा के सान्निध्य में आने पर शायद तुम्हें भी ऐसा अनुभव हुआ होगा। तुम्हें सहसा शान्ति की अनुभूति हुई होगी, ऐसा प्रतीत हुआ होगा कि तुम्हारी सारी चिन्ताएँ और परेशानियाँ समाप्त हो गई हैं। तुम्हारे मन में अनेक प्रश्न रहे होंगे पर वहाँ पहुँचकर सब छू-मंतर हो गए होंगे। पूर्ण विश्रान्ति का अनुभव करते हुए तुम्हारे मन में सम्भवत: यह विचार आया होगा, 'यहाँ बड़ा शान्त वातावरण है। मेरे मन में ढेर सारे प्रश्न थे, पर अभी तो एक भी नहीं है।' यह उस योगी या साधु से नि:सृत प्रेम की सूक्ष्म तरंगों के कारण होता है, जो मन की सभी चिन्ताएँ मिटा देती हैं।

प्रेम का उपदेश

दुनिया के झंझटों से परेशान होकर कुछ व्यक्ति एक वटवृक्ष के नीचे बैठे वार्त्तालाप कर रहे थे। तब एक ने कहा – हम सब मिलकर जंगल में रहेंगे और तपस्या करेंगे। लेकिन यह तो सोचो कि जब ईश्वर वरदान माँगने को कहेगा तो माँगोगे क्या?

दूसरे ने कहा – अन्न माँगेंगे, उसके बिना जीवित रहना सम्भव नहीं। तीसरे ने कहा – बल माँगेंगे, बल के बिना सभी कुछ निरर्थक है। चौथे ने कहा – बुद्धि माँगना ज्यादा उचित है, बुद्धि की आवश्यकता प्रत्येक कार्य को करने से पूर्व होती है। तब पाँचवाँ बोला – ये सब वस्तुएँ तो सांसारिक हैं। आत्म-शान्ति माँगेंगे, जो मनुष्य का अन्तिम लक्ष्य है।

तब पहले व्यक्ति ने कहा – तुम सब मूर्ख हो, क्यों न हम स्वर्ग ही माँग लें? वहाँ समस्त उपलब्धियाँ एक साथ ही हो जायेंगी।

इन सबकी बात सुन रहा विशाल वटवृक्ष ठहाका लगाता हुआ बोला – मेरी बात मानो, तुम लोगों से न तपस्या होगी, न उपलब्धियाँ प्राप्त होंगी, क्योंकि यदि इतना मनोबल होता तो संसार से घबराकर न भागते। मैं बिना माँगे ही एक वरदान देता हूँ, उसका नाम है प्रेम। प्राणीमात्र से प्रेम करो, फिर देखो जो वस्तु चाहोगे वही प्राप्त करने की क्षमता तुम्हारे अन्दर आ जायेगी।

इतना सुनते ही सभी अपने-अपने घर गये और मानवता की सेवा में जुट गये।

कर्म का सिद्धांत

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

कर्म का नियम आपके जन्म, स्थिति और जीवन की परिस्थितियों को निश्चित करता है। कर्म शब्द की व्युत्पत्ति 'कृ' धातु से हुई है, जिसका तात्पर्य कार्य से है। कार्य के पहले उसका कारण होता है। प्रत्येक कारण की परिणति कार्य होता है। यह तथ्य हमारे चारों ओर सर्वत्र दिखलाई पड़ता है। आप एक बीज बोते हैं। वह अंकुरित, पल्लवित और पुष्पित होकर अन्त में फल देता है। हम फल खा लेते हैं और बीज जमीन पर गिर जाता है। वह पुन: एक वृक्ष को जन्म देता है। कार्य-कारण की यह शृंखला अन्तहीन होती है। हर कदम पर हर कार्य अपने कारण का परिणाम होता है।

इसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति में संभावित और सुषुप्त कर्म-बीज होता है, जो उसके विगत अनेक जीवनों के कर्मों का बीज रूप होता है। पुन: यह बीज विविध कर्मों के रूप में अभिव्यक्त होता रहता है। यदि आप आम का बीज बोएँ, तो आपको आम के सिवाय कोई दूसरा फल नहीं प्राप्त हो सकता। इसी प्रकार आपके विगत कर्म यह निश्चित करते हैं कि आप धनवान् होंगे अथवा गरीब, रूपवान् होंगे अथवा कुरूप, नीरोगी होंगे अथवा रोगी, विख्यात होंगे अथवा कुख्यात, गृहस्थ होंगे अथवा संन्यासी। आपका भविष्य आपके अपने कर्म निर्धारित करते हैं। इसलिए कर्म के नियम की माँग होती है कि आप अपने कर्मों का चुनाव सोच समझकर करें।

अपने पूर्व संचित कर्म के अनुसार आगामी जीवन बिताने के लिये आप बाध्य होते हैं। इसलिये उस कर्म को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिये जीवन के कार्यों, कर्त्तव्यों तथा अनिवार्यताओं को पूरी क्षमता, निष्ठा और निष्काम भावना के साथ करना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति किसी लक्ष्य विशेष को पाने के उद्देश्य से पैदा होता है और जाने-अनजाने कर्म करता हुआ उस लक्ष्य विशेष को पाने की कोशिश करता है। यह लक्ष्य उसके संस्कारों तथा पूर्वानुभवों का फल होता है। ये संस्कार हम अपने संचित कर्म अथवा माता-पिता से विरासत के रूप में ग्रहण करते हैं।

संस्कार का तात्पर्य अनुभव अथवा प्रभाव होता है। जिस प्रकार एक बीज में महान् वृक्ष बनने और फल देने की नियति छुपी होती है, उसी प्रकार आपकी चेतना के भीतर ये संस्कार छुपे रहते हैं। हर छोटा-बड़ा अनुभव अपने पीछे एक संस्कार छोड़ जाता है। फिर ये संस्कार ही आपके जीवन-चरित्र और व्यक्तित्व को निर्धारित करते हैं। भोजन विशेष के प्रति आपकी रुचि या अरुचि, वेशभूषा का चुनाव, व्यक्ति विशेष के प्रति राग-द्वेष, प्रतिभा, शौक, भावनायें, ताकत तथा कमजोरियाँ – सबकी सब संस्कारों के अधीन होती हैं।

हमारा मस्तिष्क निरन्तर सूचनायें ग्रहण करता रहता है। यह प्रक्रिया आपके जाने-अनजाने लगातार चलती रहती है। उदाहरण के लिये, गहन निद्रा में सोया हुआ शिशु भी अपनी माता की हत्या का साक्षी होता है। चूँकि वह बहुत छोटा है, वह यह नहीं समझ पाता कि क्या हो रहा है, परन्तु उसके मस्तिष्क का एक भाग उस अनुभव को नोट कर लेता है और समय आने पर वह अनुभव संस्कार बन जाता है। आगे चलकर इस संस्कार का विस्फोट होता है और वह उसके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बन जाता है। यह जरूरी नहीं कि उसके व्यक्तित्व की यह विशेषता उस संस्कार से मिलती-जुलती हो, क्योंकि अपनी माता की हत्या की स्मृति उसके मन में बहुत स्पष्ट नहीं होती है, परन्तु इतना तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि उस घटना का प्रभाव उसके मन पर अवश्य पड़ा था।

एक महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि अनुभवों के रूप में संस्कारों का संचय नहीं होता। यदि ऐसा होता तो संस्कारों के रहस्य को समझना बड़ा सहज हो जाता।

यदि आप सेब के बीज को काट कर देखें, तो क्या उसमें आपको सेब का वृक्ष दिखलाई देगा? कतई नहीं। ठीक इसी प्रकार हमारे भीतर संस्कार प्रतीकों के रूप में संचित होते हैं। यही कारण है कि कभी-कभी उनकी अभिव्यक्ति बड़े उटपटांग ढंग से होती है, जिनका उस घटना से जरा भी ताल-मेल नहीं बैठता, जो उन्हें अभिव्यक्ति प्रदान करती है।

ध्यान की अवस्था में स्वप्न, दृश्य तथा अनुभव आपके संचित संस्कारों की अभिव्यक्तियाँ होते हैं। कुछ संस्कार इतने गहरे दबे होते हैं कि उन्हें ऊपर लाने के लिये हमें स्वयं की गहराई में उतरना पड़ता है। दूसरे प्रकार के संस्कार आसानी से ऊपर आ जाते हैं। कुछ अन्य बड़े शक्तिशाली तथा विस्फोटक होते हैं, जो लम्बे समय तक हमसे जुड़े रहते हैं। कुछ इतने क्षीण होते हैं, जो हमें अपने अनुरूप कार्य करने के लिये बाध्य नहीं करते।

यदि आप अत्यन्त उग्र और हिंसक हैं, तो इसका कारण कोई तीव्र संस्कार होता है। यदि आप करुणामय, दानी और दयालु हैं तो उसका कारण भी संस्कार ही होते हैं। यदि आप विख्यात और लोकप्रिय हैं, अथवा दूसरों के घृणा के पात्र हैं, तो उसका कारण भी संस्कार ही हैं। आप स्वयं अपने संस्कारों के निर्माता और जीवन को दिशा देने वाले हैं। यद्यपि आपके समक्ष यह विकल्प है कि अपने आगामी जीवन को वांछित दिशा देने के लिये उपयुक्त कर्मों का चुनाव स्वयं कर सकें, परन्तु वर्तमान में आप जैसा भी जीवन बिता रहे हैं उसके लिये अपने पूर्व संचित संस्कारों के अधीन हैं, बाध्य हैं।

कर्म का नियम बताता है कि कर्म तीन प्रकार के होते हैं – संचित, क्रियमाण और प्रारब्ध कर्म। एक उदाहरण द्वारा इन्हें अच्छी तरह समझा जा सकता है। एक धनुर्धारी अपने तूणीर से एक बाण निकालता है और उसे धनुष पर रखकर प्रत्यंचा खींचता तथा निशाना साधता है। वह बाण को छोड़ देता है जो बिना चूके अपने लक्ष्य को बेधता है।

तूणीर में रखा बाण संचित कर्म है, जिसने अभी फल देना प्रारम्भ नहीं किया है। अब उस बाण को धनुष पर रखना, प्रत्यंचा खींचना और निशाना साधना क्रियमाण कर्म है। वह अभी भी धनुर्धारी के नियंत्रण में है। जब एक बार बाण धनुष से छूट जाता है, तो निश्चय ही वह लक्ष्य पर पहुँच अपना प्रभाव उत्पन्न करेगा। यही प्रारब्ध कर्म है।

हम अपने वर्तमान जीवन में जो कुछ हैं वह पूर्व संचित कर्मों का अनिवार्य परिणाम है। हम उससे बच नहीं सकते। जो बुद्धिमान् हैं, वे जीवन के हर उतार-चढ़ाव का सामना करते हैं और उनका उद्देश्य भी जानते हैं। कर्म का विरोध द्वन्द्व, तनाव और संघर्ष उत्पन्न करता है। यदि आप कमजोर हैं, तो निश्चय ही विपत्ति में पड़ेंगे। इसीलिये कहा गया है कि आपके कर्म आपको गृहस्थ जीवन में रखते हैं, तो

वहीं रहिये तथा अपने कार्यों और जिम्मेदारियों को अच्छी तरह संभालिये। त्याग और संन्यास की बात उस समय बड़ी बेतुकी होती है जब आपके संस्कार आपको गृहस्थ जीवन में रखना चाहते हैं। परन्तु इसके साथ ही आपको यह अनुभव करना होगा कि गृहस्थ जीवन के रूप में आपको एक सुअवसर मिला है कि आप अपने उस कर्म विशेष को नि:शेष करें। जैसे ही आपका वह कर्म पूरा होगा, आप गृहस्थी के जंजाल से, उसके उत्तरदायित्वों से मुक्त हो जायेंगे।

एक कर्म संन्यासी के लिये गृहस्थ जीवनयापन अपने कर्मों की समाप्ति का स्वर्णिम अवसर होता है। इसलिये वह गृहस्थ जीवन को अपने धर्म तथा कर्त्तव्य के रूप में सहर्ष स्वीकारता है। वह उसकी उपेक्षा अथवा निषेध नहीं करता। जीवन का प्रत्येक अनुभव उसकी उच्च चेतना के विकास का सोपान होता है। वह सामान्य गृहस्थ जीवनयापन करते हुए उसमें होने वाले हर अनुभव का उपयोग अपनी चेतना के विकास के लिये करता है। वह एक ऐसी अवस्था में पहुँचता है, जहाँ नये कर्मों का संचय नहीं होता है।

कर्म संन्यासी सामान्य आदमी की तरह रहता है, अपने कार्यों को करता है। परन्तु उसमें उच्च चेतना होती है। उसकी दृष्टि से लक्ष्य ओझल नहीं होता। अपने कर्मों में उसकी निष्ठा होती है, जीवन के प्रति गहरी सूझ-बूझ होती है और धीरे-धीरे वह स्वयं को कर्म के बन्धन तथा कार्य-कारण के नियम से मुक्त कर लेता है।

वासनाओं का निर्मूलन

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

इस जीवन के अस्तित्व का क्या अर्थ निकाला जाय? यह जीवन क्यों है? उत्तर केवल एक है – परमात्मा के साक्षात्कार के लिए, विश्वादि सृष्टियों में परिव्याप्त पूर्णता का ज्ञान प्राप्त करने के लिए। तब दर्शन किस प्रकार हो और ज्ञान कैसे प्राप्त किया जाय? वासनाओं के अस्त होने पर ही आत्मज्ञान, परमात्मा-दर्शन का सूर्योदय होता है। वासनाओं के लुप्त होते ही ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। जब तक वासनाओं का तिरस्कार नहीं किया गया तब तक ज्ञान प्राप्त हो ही कैसे सकता है? 'वासना का त्याग ही मोक्ष है' – श्रुति ऐसा कहती है।

वासना क्या है?

इच्छाओं की सूक्ष्म अवस्था को वासना कहा जाता है। वासना का स्थूल रूप ही इच्छा है। जो वासना अन्तर्हित रहती है, उसे 'क्षय-वासना' कहते हैं। कुछ दार्शनिकों का मत है कि वासना प्रवृत्तिलक्षणात्मक है, अर्थात् चित्त-वृत्तियों अथवा अभिलाषाओं का पर्याय ही वासना है। कुछ और लोगों का मत है कि किसी योजना या निश्चय के बिना तीव्र तृष्णा के वशीभूत हो कर अन्धे के समान वासनात्मक पदार्थों के भोग में तन्मय होने की भावना को वासना कहा जाना चाहिए।

वासनाएँ दो प्रकार की होती हैं – शुभ वासना और अशुभ वासना। शुभ वासना व्यक्ति को जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त करती है। अशुभ वासनाओं से पुनर्जन्म होता है। अशुभ वासनाओं के कारण मन सदा व्यग्र और चंचल तथा पदार्थों के प्रति आसक्त रहता है। यदि शुभ वासनाओं को स्वीकृत करोगे तो अवर्णनीय आनन्द की प्राप्ति होगी। जिस प्रकार भुने या तले हुए बीज पनपने योग्य नहीं रहते, ठीक उसी प्रकार शुभ वासना भी पुनर्जन्म के रूप में नहीं पनप सकती है।

पूर्वजन्म में जो वासनाएँ संचित की जा चुकी हैं, वे आगामी जन्मों में भी साथ-साथ चिपकी रहेंगी। शुभ वासनाओं के संचय से मुक्ति मिलेगी और अशुभ वासनाओं के संचय होने से दु:ख, चिन्ता, सन्ताप तथा अनेकों जन्मों की प्राप्ति होगी। अशुभ वासनाशील व्यक्ति बार-बार इस संसार में जन्म लेता रहता है और दु:ख पाता है।

इच्छा होती है, जैसे सिनेमा जाने की इच्छा, मांसाहार की इच्छा, मैथुन की इच्छा, अयुक्त मार्गों से दूसरे का धन हरने की इच्छा – ये अशुभ वासनाएँ हैं। काम, क्रोध, लोभ, अहंकार, छल-कपट, भ्रम, घृणा, द्वेष – ये सभी अशुभ वासनाएँ हैं। जिस प्रकार अशुभ इच्छा होती है, उसी प्रकार शुभ इच्छा भी होती

है, जैसे सत्संग और सन्तों के साथ बैठने की इच्छा, महात्माओं और भक्त लोगों की सेवा करने की इच्छा, दीन और हीन लोगों की सेवा करने की इच्छा – ये शुभ वासनाएँ हैं। दया, प्रेम, सहनशीलता, दानशीलता, ब्रह्मचर्य, सत्यता, क्षमाशीलता और साहस – ये शुभ वासनाओं के कुछ रूप हैं।

अशुभ वासना तीन प्रकार की होती है – लोक-वासना, शास्त्र-वासना और देह-वासना। नाम और यश, प्रतिष्ठा और ख्याति, शक्ति और मर्यादा की प्राप्ति की इच्छा को लोक-वासना कहा जाता है। महा-पण्डित बनने की इच्छा, दूसरों के साथ तर्क करने की इच्छा और तर्क में उन पर विजय पा लेने की इच्छा को शास्त्र-वासना कहा जाता है। मन में एक इच्छा होती है कि सुन्दर शरीर और गठन होना चाहिए, मक्खन आदि खा कर शरीर को भारी, स्थूल बनाना चाहिए – ये सब देहात्मक वासनाएँ हैं। ये सभी वासनाएँ अशुभ हैं, जो जीव को संसार से बाँधे रहती हैं और बार-बार उसे इस लोक में वापस लाती हैं।

जो शक्तिशाली वासना तुम पर अपना अधिकार स्थापित करती है, उसी वासना के स्वरूप में तुम तन्मय हो जाते हो। बीज से वृक्ष पैदा होता है और वृक्ष से ही बीज। इसी तरह प्राणों की लहरों के द्वारा वासना का उदय होता है और वासना के उदय होने से प्राण प्रगतिमय होते हैं। दोनों में से एक को नष्ट कर दीजिए, दोनों का नाश अवश्यम्भावी है।

अविद्या अथवा अज्ञान से सर्वप्रथम अहंकार का जन्म होता है। अहंकार की दो कन्याएँ, राग और वासना हैं। जहाँ वासना, वहाँ राग, दोनों साथ-साथ रहते हैं। राग को आसक्ति या मोह भी कहा जा सकता है। राग के कारण ही ममता होती है। यदि राग और वासनाओं का लोप करना हो तो पहले-पहल अहंकार का ही मूलोच्छेदन करना होगा। अहंकार के मूलोच्छेदन के लिए अविद्या को हटाना होगा। अविद्या को हटाने पर अहंकार, राग और वासनाएँ अपने-आप मर जायेंगी।

वासनाओं का स्वरूप अतिसूक्ष्म होता है। जिस प्रकार बीज में फूल अन्तर्हित रहता है, उसी प्रकार वासनाएँ हृदय में अन्तर्हित रहती हैं। संस्कारों के गतिशील हो जाने पर सुख की स्मृति का आविर्भाव होता है। आनन्द के अनुभव का स्मरण करते ही इच्छाएँ जागती हैं। जब इच्छा जाग जाती है तो इन्द्रियाँ मन के सहयोग में काम

करने लग जाती हैं। फलस्वरूप मनुष्य इच्छित वस्तु की प्राप्ति और उसके उपभोग के लिए भरसक प्रयत्न करता है। ये सब कार्य क्षणमात्र में सम्पन्न हुआ करते हैं।

इच्छित वस्तु की प्राप्ति आनन्ददायक और अनिच्छित वस्तु की प्राप्ति दु:खदायी सिद्ध होती है। इसलिए पदार्थभोग का कारण अशुभ वासना है। जब हम तत्कथित भोग से तृप्त हो जाते हैं, तब आनन्द का स्रोत बन्द हो जाता है, परन्तु वासना रुक गयी तो? वासना के रुकते ही मन का नाश हो जायेगा और अन्य सभी उपकरणों का निवारण भी। तात्पर्य यह कि आत्मज्ञान की शत्रु, इस वासना को विगलित कर अमरत्व की प्राप्ति करो।

मन का प्रबंधन

मन ही बन्धन और मोक्ष का कारण है। जिस मन में अशुभ वासनाएँ पनप रही हैं, वह मन मनुष्य को बन्धन की ओर ले जाता है। जिस मन में अशुभ वासनाएँ नहीं हैं, वह उसे मुक्ति की ओर ले जाता है। वासनाओं का क्षय हो जाने पर मन का भौतिक अस्तित्व नहीं रहता। मनस् तत्त्व के न होने पर व्यक्ति में ज्ञान-चक्षुओं का विकास होने लगता है और ज्ञान का स्रोत फूट पड़ता है। इसी अवस्था में साधक अकथनीय शान्ति अनुभव करने लगता है।

मन वासनामय है, वासनाओं के माध्यम से मन भोग-पदार्थों में लिप्त रहता है और हरदम भोग-विलास की ही बातें सोचता रहता है। पर वासनाओं का क्षय होते ही वह पदार्थों में रमना छोड़ देता है और तब हम निर्विचार अवस्था की प्राप्ति कर पाते हैं। मन को एक वस्त्र के समान समझना चाहिए। जब वस्त्र को पीले रंग से रंगते हैं तो वह पीला हो जाता है, यदि लाल रंग से रंगते हैं तो लाल हो जाता है, अर्थात् वस्त्र को जिस रंग में रंगना चाहें वही रंग उसमें प्रत्यक्ष होता है और वह वस्त्र भी उसी रंग का माना जाता है। इसी प्रकार मन को वासनाओं के जिस रंग में रंगा गया हो, वही रंग उसमें प्रत्यक्ष हो जाता है। सात्त्विक वासनाओं से मन में श्वेत रंग प्रत्यक्ष होता है तो राजसिक वासनाओं से लाल और तामसिक वासनाओं से काला रंग चढ़ जाता है। जैसी वासना, वैसी भावना।

जब तक मन को आत्म-विचार के अभ्यास से विषय-उपरत नहीं कर दिया जाय, तब तक वासनाएँ रहेंगी ही। वे बार-बार आक्रमण करती रहेंगी, लुक-छिपकर साधक को सन्तप्त करती रहेंगी। कभी तो वे इन्द्रियों के द्वार से अन्दर प्रवेश करेंगी, कभी-कभी संस्कारों के मार्ग से और कभी नेत्रों की राह से भी। उनकी उपस्थिति और उनके प्रवेश-मार्ग को जानने के लिए सतत् जागृत और सचेत रहना चाहिए।

जब मन अशुभ वासनाओं से पूर्णतया मुक्त हो जाता है तो हम अनेकों प्रतिकूलताओं और आपत्तियों के बावजूद भी सन्तुलित और धीर रह सकते हैं। वासनाओं का निवारण होते ही मन शान्त और स्निग्ध हो जाता है। वैराग्य और

विवेक, इन्द्रिय-संयम, आत्म-चिन्तन और ध्यान द्वारा मन की अशुभ वासनाओं का दमन किया जा सकता है।

यह बात अवश्य जान लेनी चाहिए कि अशुभ वासनाएँ दृढ़ और हठी हुआ करती हैं। उनको भगाओ भी तो वे मन के अन्दर, किसी कोने में, चुपचाप छिप जाया करती हैं और वहीं से अपनी चालाकी के खेल खेला करती हैं। कभी-कभी तो वे अपना वेष बदल कर मन के अन्दर रहा करती हैं। योगाभ्यास करते रहने से वे कुछ काल तक दबी हुई रहती हैं। अगर हम अपने ध्यान में नियमित नहीं हैं, यदि हममें वैराग्य का अभाव होने लग गया तो वे फिर मौका पा कर दुगुने वेग से आक्रमण करेंगी। अत: यह जरूरी है कि हमें बुद्धि द्वारा उनकी उपस्थिति का पता लगाने की शक्ति प्राप्त होती रहे। इसके लिए शुद्ध और कुशाग्र बुद्धि की आवश्यकता है। अनेकों जन्मान्तरों से अभ्यस्त हुई ये वासनाएँ आसानी से नहीं भगायी जा सकती हैं। इनमें बल रहता है, और शक्ति होती है। निरन्तर आध्यात्मिक साधना, आत्म-चिन्तन, विवेक, दम, प्रत्याहार ओर योगाभ्यास करते रहने से ही इनका दमन किया जा सकता है।

जब नया साधक साधना आरम्भ करता है तो शुभ और अशुभ वासनाओं के बीच झगड़ा आरम्भ होता है। विचारों की प्रकृति वासनाओं की प्रकृति पर निर्भर रहा करती है। जब मन में बुरे विचार जाग रहे हों तो अशुभ वासनाओं को मन में स्थित हुआ जानना चाहिए। इसीलिए आरम्भ में अथक परिश्रम कर शुभ वासनाओं से मन को परिपूर्ण कर देना चाहिए और सदा शुद्ध विचारों को ही मन के अन्दर रहने देना चाहिए।

जिसकी वासनाओं का क्षय हो चुका है, वही साधक धारणा और ध्यान में सफलता प्राप्त कर सकेगा। वासनाओं के दमन से मन का दमन हो जाता है। मन और है क्या, केवल वासनाओं का समूहमात्र ही तो है? बहुत से साधकों की शिकायत है – 'हम पिछले 15 सालों से ध्यान का अभ्यास करते आ रहे हैं, किन्तु अभी तक धारणा और ध्यान में पूर्ण एकाग्रता नहीं हो पायी है।' साधकों की इस शिकायत का कारण यह है कि उन्होंने वासनाओं का दमन या निवारण नहीं किया होगा। उनमें वासनाओं का जोर होगा। इसलिए आवश्यक है कि वे प्रथमत: पूरे प्रयत्न से वासनाओं का दमन करें। वासना ही शान्ति और ध्यान की शत्रु है। यदि हम नित्य-दृष्टि में स्थापित हो चुके हैं, यदि हमें पूर्ण विश्वास हो चुका है कि यह संसार नश्वर है तो वासनाएँ स्वत: ही पराभूत हो जायेंगी।

सांसारिक व्यक्ति अशुभ वासनाओं का दास रहता है। साधक में जब कभी अशुभ वासनाएँ अपना सिर उठाती हैं तो वह अपनी संकल्प-शक्ति तथा आध्यात्मिक बल से उनको तुरन्त हटा देता है। जीवन्मुक्त में वासनाओं की भस्ममात्र ही रहती है। लोकरत गृहस्थी में वासनाओं का साम्राज्य खूब फैला हुआ रहता

है। साधक में वासनाएँ नियन्त्रित रहती हैं, उनको सिर उठाने का अवसर भी नहीं मिलता। पर यह बात जरूर है कि वासनाओं को अन्दर-ही-अन्दर दबाना किसी भी हालत में सहायक नहीं होगा। वासनाओं का तो निराकरण और निष्कासन ही हो जाना चाहिए, जिस प्रकार जहरीले सर्प के विषदन्त निकाल लिये जाते हैं। तभी ब्रह्मपद की प्राप्ति की जा सकती है।

निरन्तर प्रयत्नों से वासनाओं को शुभमार्गगामी बनाया जा सकता है। वासनाओं के अशुभ प्रभाव को बाँध से रोक कर उसे शुभ मार्ग से ले जाना होगा। शुभ वासनाएँ प्रचुर मात्रा में हैं तो कोई हानि नहीं। वैसे तो शुभ वासना भी एक प्रकार का बन्धन है, किन्तु जिस प्रकार हम एक काँटे से दूसरे काँटे को निकाल कर बाद में दोनों को फेंक देते हैं, उसी प्रकार शुभ वासनाओं से अशुभ वासनाओं का पराभव कर, शुभ वासनाओं का भी त्याग करना ही होगा। यहाँ तक कि अन्त में मोक्ष-प्राप्ति की वासना भी नहीं रहनी चाहिए। तभी 'तत्' शब्द से सूचित ब्रह्मपद की प्राप्ति की जा सकती है।

समन्वित साधना

आत्म-ज्ञान की प्राप्ति करने के लिए, अन्य अभ्यासों के साथ-साथ वासना-क्षय, मनोनाश और तत्त्व-ज्ञान का अभ्यास भी करना चाहिए। केवल एक ही प्रकार की साधना पर्याप्त नहीं, बल्कि अनेकों अभ्यासों का समन्वय करना होगा, तभी मोक्ष की प्राप्ति की जा सकती है। जिसके हृदय में वासना का लेशमात्र नहीं, वही संसार

में सचमुच सुखी और समृद्ध है, वही जीवनमुक्त है। आत्म-ज्ञान प्राप्त हो जाने तथा ब्रह्म में समाधिगत हो जाने पर भी प्रह्लाद भगवान् हरि के स्पर्श से इस भौतिक चेतना में उतर आया था, क्योंकि उसमें संस्कारों का अवशेषमात्र रहा हुआ था। पर वे संस्कार शुभ-वासनात्मक ही थे। जीवनमुक्त सन्तों में वासनाएँ भस्मीभूत बीज के समान शेष रहती हैं, उनमें पुनर्जन्म की शक्ति नहीं रहती। जिस प्रकार गहरी निद्रा में वासना बीज के समान अनंकुरित अवस्था में रहती है, उसी प्रकार शुभ वासनाएँ, सात्त्विक ज्ञान से सम्पर्क रखने के कारण, ध्यानी जीवनमुक्तों में भी रहती हैं। जब तक शरीरपात नहीं होता, तब तक जीवनमुक्तों में वासना के अवशेष अन्तर्हित अवस्था में विद्यमान रहते हैं। धीरे-धीरे उनका विलोप होता है। जीवनमुक्त पुरुष इस संसार की प्रत्येक वस्तु को शुभ वासनामयी दृष्टि से देखते हैं।

शुद्ध विचार और विवेक के अभ्यास से अपने-आपको इन पदार्थों के सम्पर्क से दूर ही रखना होगा। पदार्थों के अभाव में अहं-भावना और ममत्व कहाँ, और इन दोनों के अभाव में पदार्थभाव कहाँ? अत: बार-बार यही विचार करो और इसी विचार को अपने मन के अन्दर पुष्ट करो कि अहं-भाव और ममत्व के साथ पदार्थों का कोई सम्बन्ध नहीं, दोनों एक-दूसरे से भिन्न-भिन्न हैं। अपने-आपको असीमित और अपार सच्चिदानन्द परब्रह्म के साथ एक समझो। इस भौतिक देह के अध्यास का तो त्याग ही श्रेयस्कर है। विदेहमुक्त बन जाओ, जैसे राजा जनक थे। अब वासनाएँ रही कहाँ?

यह कारण शरीर अज्ञानजनित है। इसमें वासना और संस्कारों की प्रचुरता है। ब्रह्म अथवा आत्मा में वासनाएँ कहाँ? वह तो शुद्ध, निर्विकार, निर्लिप्त और द्वन्द्वातीत है। आत्मा निरिन्द्रिय और अप्राण है। इन गुणों से युक्त ब्रह्म का सदा ध्यान करने से वासनाओं का क्षय हो जाता है। शुद्धि का अवतरण हो तो अशुद्धि कहाँ, या यूँ कहिए कि अशुद्धि का निवारण होते ही शुद्धि का अवतरण स्वाभाविक हो जाता है। अनुकूलता से प्रतिकूलता का समाधान होता है, यह प्रकृति का महाविधान है। वासनाओं का नाश कर दो और सदा के लिए सच्चिदानन्द ब्रह्म में संस्थित रहो। उस अमर ब्रह्म-पद की प्राप्ति करो, जहाँ परम आनन्द, शाश्वत सुख और नित्य तृप्ति है।

सृष्टि की सभी शिल्पशालाओं में शरीर-रूपी शिल्पशाला अत्यन्त अद्भुत है। यह मानव द्वारा नहीं, ईश्वर द्वारा बनायी गयी है। इस आश्चर्यजनक शिल्पशाला में वासनाओं को इच्छाओं में बदला जाता है, अशुभ वासनाओं का दमन होता है, शुभ वासनाओं का उत्पादन किया जाता है तथा विचारों की शृंखला जोड़ी जाती है, अन्त में महामूल्यवान् वस्तु – ब्रह्मज्ञान-रूपी नवनीत उसमें से मथ कर निकाल लिया जाता है। इस अद्वितीय शिल्पशाला के अदृश्यभूत महाशिल्पी, तुम्हारी जय हो! आश्चर्यजनक वस्तुओं से भरी-पूरी तथा आज तक की अज्ञात शिल्पशाला के शासक और राजा! तुम्हें प्रणाम है! नमस्कार और पुन: नमस्कार है!

योग और सामाजिक परिवर्तन

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

परमगुरु स्वामी शिवानन्द जी ने अपने शिष्यों में, जिनमें हमारे गुरुदेव स्वामी सत्यानन्द जी भी हैं, योग की दीप-शिखा प्रज्वलित की थी और उन्हें संसार के सभी मनुष्यों के मध्य योग के प्रचार-प्रसार कार्य हेतु प्रोत्साहित किया था। एक सिद्धहस्त चिकित्सक होने के नाते, एक बुद्धिजीवी होने के नाते, एक वैज्ञानिक होने के नाते एवं सबसे अधिक, एक मानवतावादी होने के नाते उन्होंने अनुभव किया था कि आज संसार में मनुष्य जिन रोग-व्याधियों से पीड़ित है, उनका निदान किसी भौतिक चिकित्सा प्रणाली के पास नहीं है, वरन् मानव की समस्त समस्याओं का निदान उसके ही अन्दर विद्यमान है। उनकी मान्यता थी कि यदि मानव अपना जीवन बिगाड़ सकता है तो उसके अन्दर यह क्षमता भी है कि वह अपने जीवन का निर्माण कर सकता है, जीवन को सुधार सकता है, उसमें सुख और शान्ति ला सकता है।

भौतिकता का सम्मोहन

जीवन को बिगाड़ने वाली तो अनेक परिस्थितियाँ होती हैं, और हम स्वयं भी होते हैं। परन्तु इस जीवन को संवारने की क्षमता भी हममें विद्यमान है, भले ही उसकी जानकारी हमें नहीं है। इसका कारण है कि हम अपना जीवन बिगाड़ चुके हैं।

हमें पता भी नहीं कि हम जीवन के किस मोड़ पर खड़े हैं। आप लोग मेरी बातों से सहमत अवश्य होंगे, क्योंकि सभी प्रकार की सम्पन्नता प्राप्त करने के बाद भी मानव अभी तक अस्वस्थ है, अशान्त है। आज तक हम एक भी ऐसे व्यक्ति से नहीं मिले हैं जो यह कहे कि मैं पूर्णरूपेण स्वस्थ हूँ। यदि कोई शरीर से स्वस्थ है तो मन से बीमार है। अगर मन से स्वस्थ है तो भावनात्मक स्तर पर दु:खी है। यदि भावनात्मक स्तर पर भी स्वस्थ है तो आध्यात्मिक स्तर पर अस्वस्थ है। तात्पर्य यह कि हमारे जीवन में कहीं-न-कहीं इस प्रकार की पीड़ा अवश्य रहती है। यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि मनुष्य न आज तक पूर्णरूपेण स्वस्थ रहा है, और न कभी रहेगा। इसका कारण है भौतिकता के प्रति सम्मोहन। यह भौतिक सम्मोहन ऐसा विचित्र जादू है जो मनुष्य को अपने आप से बराबर दूर ही ले जाता है, जो हमारा स्वयं से सम्बन्ध तुड़वा चुका है।

आप अपने जीवन में ही देखें, आपके शरीर में, आपके मन और भावनाओं के क्षेत्र में क्या संतुलन और सामंजस्य है? नहीं है। हमने प्रारम्भ से ही एक भूल की है। हमारे भीतर एक संस्कार है, और यह संस्कार आदि मानव से चला आया है। सर्वप्रथम जो मानव धरती पर अवतरित हुआ, और उसने चारों तरफ देखा, तो उसके भीतर स्वाभाविक जिज्ञासा जगी, 'मैं कौन हूँ? इस पृथ्वी का रचयिता कौन है? यह सृष्टि किसने बनायी है? इस पृथ्वी, इस ब्रह्माण्ड का निर्माता कौन है?' यही प्रथम जिज्ञासा या विचार संस्कार के रूप में हमारे भीतर के डी.एन.ए. में पड़ा हुआ है। पर हम तो इस विचार से विमुख हो भोग और भौतिकता में लिप्त हो गये हैं। और यही कारण है हमारे दु:खों का, हमारी अशान्ति का, हमारे क्लेश, रोग, अस्वस्थता और असंतुलन का। ये बढ़ते ही जा रहे हैं, क्योंकि हमने भोग को ही सब कुछ माना है।

यजुर्वेद की चालीसवीं संहिता में कहा गया है –

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा: मा गृध: कस्यस्विद्धनम् ॥

जब तक प्राणी इस संसार में है, उसे भोग करना ही है, भोग से वह भाग नहीं सकता। भोग का वह त्याग नहीं कर सकता, क्योंकि देह का, बुद्धि का, भावनाओं का एक धर्म होता है। हमारे समस्त व्यक्तित्व का एक धर्म है, एक कर्म है। जब तक यह व्यक्तित्व है, हमें भोग तो भोगना ही है। इनसे दूर रहना सम्भव नहीं है। परन्तु भोग जब तक एक लक्ष्य या प्राप्ति के रूप में सामने रहता है, तब तक उसमें लिप्तता बढ़ती जाती है, उसकी कामना प्रबलतर होती जाती है। महत्त्वाकांक्षाएँ बढ़ती जाती हैं। फिर तो एक ऐसा दुश्चक्र बन जाता है कि मनुष्य अपना सुख, चैन और स्वास्थ्य, सब खो देता है।

योग के सोपान

हमारे ऋषि-मुनियों ने एक ऐसे समाधान का आविष्कार कर समाज के सामने प्रस्तुत किया है, जिसके द्वारा हम भोग को भी योग में परिणत कर सकते हैं, जिससे हमारे शरीर का सामंजस्य मन के साथ, एवं मन का आत्मा के साथ हो जाय। इसी समाधान का नाम है योग। योग का अर्थ है एक साथ आना, एक साथ जुड़ना। यह जो जोड़ने की प्रक्रिया है, यह पूर्णतया व्यावहारिक है, केवल दार्शनिक विचार नहीं है। इसके द्वारा हम अपने शरीर, अपनी इन्द्रियों एवं उनके द्वारा अर्जित ज्ञान को मन के साथ जोड़ते हैं। मन की विभिन्न शक्तियों को एक दिशा प्रदान करते हैं। आत्मशक्ति को जाग्रत करने का प्रयत्न करते हैं। फिर सामंजस्य की स्थापना प्रत्येक स्तर पर होती है। इस विधि को ही, इस समाधान को ही योग कहते हैं।

योग अनुशासन की एक प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से आप अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व को संयत कर सकते हैं, अपने समग्र जीवन को अनुशासित कर सकते हैं। इस योग के विभिन्न पक्ष हैं। महर्षि पतंजलि ने इसके चार पक्षों का वर्णन किया है। पहला पक्ष है यम और नियम। दूसरा पक्ष है आसन और प्राणायाम। तीसरा पक्ष है प्रत्याहार और धारणा, तथा चौथा पक्ष है ध्यान और समाधि।

यम और नियम के अभ्यास द्वारा मनुष्य अपने विचार और व्यवहार में परिवर्तन एवं संतुलन लाता है। आसन और प्राणायाम द्वारा सभी शरीरस्थ तंत्रों और तंत्रिकाओं में अनुशासन स्थापित किया जाता है। शरीर में स्वास्थ्य, शक्ति, ऊर्जा और स्फूर्ति का अनुभव किया जाता है। प्रत्याहार और धारणा के द्वारा चंचल मन को शान्त करने का प्रयत्न किया जाता है, मानसिक एकाग्रता में वृद्धि की जाती है। ध्यान के द्वारा अपने स्वरूप का दर्शन किया जाता है। अन्त में अपने नित्य शरीर का बोध होता है। यह योग की पारम्परिक प्रक्रिया है।

कुछ लोग कहते हैं ध्यान अत्युत्तम है, इससे ईश्वर का दर्शन होगा। कुछ कहते हैं कि प्राणायाम से कुण्डलिनी का जागरण होगा। योग इन सब को मानता है, लेकिन साथ ही यह भी कहता है कि योग में जो प्राप्ति होगी वह तो अभ्यास का परिणाम ही है। जब योगाभ्यास में मनुष्य स्वयं को परिपक्व बना लेता है, तब परिणाम के रूप में उसे पूर्णता की प्राप्ति होती है, उसे आत्मदर्शन होता है, उसकी अन्तर्शक्ति जाग्रत होती है।

योग में परिणाम माना गया है एक संतुलित आहार, विचार, व्यवहार, तथा जीवन पद्धति को। इसलिये कहा गया है कि सर्वप्रथम शरीर में जो असंतुलन है, उसे दूर करो, क्योंकि जब तक असंतुलन की अवस्था बनी रहेगी, तब तक कोई लाभदायक परिणाम प्राप्त नहीं होगा। जिस प्रकार अर्जुन बाण चलाते समय केवल अपने लक्ष्य को देखते थे, उनकी इस क्रिया में उनकी एकाग्रता और शक्ति का बोध होता है, ठीक उसी प्रकार से हमलोगों को भी लक्ष्य-भेद करने के लिये एकाग्रता और

शक्ति की आवश्यकता है। चंचल, तनावपूर्ण अथवा रोगपूर्ण अवस्था में, अशान्त अवस्था में लक्ष्य-भेदन सम्भव नहीं है। आप प्रयास कीजिये, बिना लक्ष्य की ओर देखे गोली चलाइये, गोली निशाने पर नहीं लगेगी। शस्त्र से मतलब नहीं, शस्त्र के पीछे जो शस्त्रधारी खड़ा है, महत्त्व उसका अधिक है। अगर मनुष्य एकाग्रचित्त है, संयत है, केन्द्रित है, तो उसका महत्त्व शस्त्र की अपेक्षा अधिक है। योग की यही विचारधारा है।

हमलोगों को सर्वप्रथम शरीर में सामंजस्य उत्पन्न करना होगा। फिर शरीर और मन में। फिर मन और आत्मा में। आत्मा तो अति सूक्ष्म है, इस अति सूक्ष्म अवस्था को किस प्रकार पकड़ा जाए, जाना जाए, अनुभव किया जाए? यह किसी के वश की बात नहीं है। मन आत्मा से थोड़ा स्थूल है, लेकिन फिर भी सूक्ष्म है। तो मन को किस प्रकार नियंत्रण में लाया जाए? इसकी चंचलता को कैसे समाप्त किया जाए? यह भी मनुष्य के सामर्थ्य के बाहर है। शरीर स्थूल होता है, और इसी शरीर के माध्यम से आप अपने मन को पार कर आत्मा के क्षेत्र में प्रवेश कर सकते हैं। ऐसा योगियों का मत है।

योगासन के प्रभाव

अत: योग में शरीर शुद्धि के लिये, शारीरिक क्षमता की जागृति के लिये आसनों का विधान है। महर्षि पतंजलि ने आसनों की परिभाषा दी है – *स्थिरं सुखमासनम्।* आसन उस शारीरिक भंगिमा को कहते हैं जिसमें स्थिरता का अनुभव हो, सुख का अनुभव हो। इसके पीछे एक विज्ञान है, एक रहस्य है। आप ध्यान से देखेंगे

तो पाएँगे कि दिन में प्रतिक्षण हमारा शरीर तनाव और विश्रांति की अवस्थाओं में आता रहता है। शारीरिक तनाव की अवस्था में हमारे शरीर के तंत्र-तंत्रिकायें उत्तेजित हो जाते हैं। श्वसन तंत्र में उत्तेजना का अनुभव होगा, उदर प्रदेश में उत्तेजना का अनुभव होगा, मस्तिष्क में उत्तेजना का अनुभव होगा। इस उत्तेजना के कारण तनाव की अनुभूति होगी। इसके विपरीत है विश्रांति की स्थिति। विश्रांति की अवस्था में शरीर भौतिक रूप से विश्राम में रहता है। शरीर के स्थूल अंग विश्राम प्राप्त करते हैं, परन्तु शरीर की सूक्ष्म प्रक्रिया में विश्रांति नहीं आती।

यदि आपको इस पर विश्वास नहीं होता तो इंग्लैण्ड में हुए एक शोध के बारे में बतलाता हूँ, जिसमें मस्तिष्क के चित्र उतारे गये हैं। उन चित्रों को देखने पर पता चलता है कि विश्राम की अवस्था में भी मस्तिष्क में उत्तेजना रहती है, तथा योग अभ्यास करने के बाद मस्तिष्क में शान्ति की अनुभूति होती है। जिसे आप विश्राम की अवस्था मानते हैं, उस अवस्था में भी आन्तरिक स्तर पर विभिन्न प्रकार के तनाव स्थूल मस्तिष्क में उत्पन्न होते रहते हैं। इसे तो अपने जीवन में ही देख सकते हैं। जब आप रात्रि में बिस्तर पर लेटते हैं तो क्या उस समय आप शान्त रहते हैं? नहीं। आप किसी-न-किसी प्रकार की चिन्ता या परेशानी से, जिसका सम्बन्ध आपके परिवार से या कार्यालय से या आपके व्यक्तिगत जीवन से है, आन्तरिक रूप से उद्विग्न रहते हैं। इसी उद्विग्नता में निद्रा आती है। यह तो एक छोटा-सा उदाहरण है कि आपका शरीर, आपका मन प्रतिक्षण तनाव और विश्रान्ति की अवस्थाओं से गुजरता रहता है।

यदि हम अपने भीतर की प्राण-शक्ति को संचालित कर सकें तो वह इधर-उधर नहीं बिखरती और एक शक्तिशाली स्वरूप धारण करती है। इसी अवस्था को योग में कहते हैं, प्राणोत्थान, प्राणों की जागृति। योग दर्शन में बताया गया है कि महाप्राण, जो ब्रह्माण्ड में व्याप्त है, हमारे शरीर में पाँच रूपों में अवस्थित है, जिनके नाम हैं – अपान, समान, उदान, व्यान और प्राण। अपान का सम्बन्ध रहता है निष्कासन प्रक्रिया से। यह अधोगामी ऊर्जा है। ऊर्ध्वगामी ऊर्जा को उदान कहते हैं। तीसरा है समान, जिसका सम्बन्ध शरीर में गति एवं शारीरिक क्रियाओं से है। प्राण का पाँचवा रूप है व्यान, जो पूरे शरीर में ऊर्जा के रूप में व्याप्त है। ये सभी अपना-अपना काम करते रहते हैं, परन्तु जब सभी एक ही दिशा में काम करते हैं, तभी शरीरस्थ चक्रों का भेदन होता है, प्राणों की जागृति होती है, कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होता है। हम चाहे आसन करें या प्राणायाम, इनका प्रयोजन है प्राणों की जागृति। इनका उद्देश्य है चक्रों को स्पन्दित करना, कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करना।

लोग तो आसन को मात्र एक शारीरिक क्रिया के रूप में समझते हैं। अगर आप किसी भंगिमा में सुखपूर्वक बैठ सकते हैं, और उस भंगिमा में प्राणों का प्रवाह

सुचारु रूप से होता है, तो उस भंगिमा को हम आसन कहते हैं। यदि प्राणों का प्रवाह सुचारु रूप से नहीं होता तो वह मात्र व्यायाम है। आसनों का उद्देश्य है प्राणों का उत्थान, उसका सुचारु रूप से प्रवाह। इस प्रक्रिया में देखा गया है कि अनेक प्रकार के शारीरिक रोग भी दूर हो जाते हैं। इसका कारण है आपकी आन्तरिक शक्ति का जागरण। ये आसन आपकी आन्तरिक जीवनी शक्ति का, प्राणों का जागरण करते हैं। इसलिए महर्षि पतंजलि ने आसन और प्राणायाम को योग के शारीरिक पक्ष के रूप में महत्त्व प्रदान किया है।

मानव व्यक्तित्व का समन्वित विकास

हमारे गुरुदेव कहते हैं कि मानव बुद्धि, भावना और कर्म का एक समुच्चय है। अपने दैनिक क्रिया-कलापों में मनुष्य बुद्धि, भावना और कर्म, तीनों का उपयोग करता है। मनुष्य एकांगी नहीं हो सकता कि केवल बुद्धि का प्रयोग करे, भावना एवं कर्म को भूल जाए, या केवल भावनाओं का प्रयोग करे, बुद्धि और कर्म को भूल जाए। अगर केवल कर्म करे और बुद्धि एवं भावना को भूल जाए, तो क्या जीवन में सफलता मिलेगी? सम्भव नहीं है। इन तीनों का सन्तुलित संयोग आवश्यक है। जब तक इनका प्रयोग एक साथ नहीं होता, व्यक्ति कर्म-सिद्ध नहीं हो सकता। आपमें ईश्वर-दर्शन या कुण्डलिनी जागरण की कामना हो सकती है, लेकिन आपकी वर्तमान अवस्था में उसकी कतई सम्भावना नहीं है, क्योंकि आपमें वह पात्रता अभी नहीं है, आपकी वह तैयारी अभी नहीं है कि आप उन अनुभवों को प्राप्त कर सकें।

हमारे गुरुदेव से एक व्यक्ति ने पूछा था कि क्या इस जीवन में ईश्वर-दर्शन सम्भव है। गुरुदेव ने कहा, 'नहीं, सम्भव नहीं।' व्यक्ति ने पूछा, 'तो हम ये साधनाएँ, आसन, प्राणायाम, योग आदि क्यों करते हैं?' गुरुदेव ने उसे समझाया, देखो, खोपड़ी सीमित है और ईश्वर असीम तत्त्व है। एक असीम तत्त्व को तुम सीमित पात्र में कैसे भर सकते हो? एक कटोरी में सागर का जल भर सकते हो? सागर उसमें कैसे समायेगा? जो साधना हम करते हैं उसका एक उद्देश्य है, प्रयोजन है। हम अपनी सीमाओं को पारकर अपनी चेतना को असीम बनाने का प्रयास करते हैं। जिस क्षण हमारी चेतना की सीमाएँ टूट जाएँगी, असीम और व्यापक हो जाएँगी, उस समय जो होना होगा हो जाएगा। अवश्य हो जाएगा, लेकिन प्रयोजन यही रहना चाहिए – मानव अस्तित्व की सीमाओं का अतिक्रमण, मानव जीवन की सीमाओं को पार करना। जब तक हम अपनी सीमाओं को तोड़ नहीं देते, तब तक हममें पात्रता नहीं आएगी। और जब हम पात्र ही नहीं, तो ग्रहण कहाँ करेंगे? किसे करेंगे? कैसे करेंगे? यह तो वैसी ही बात हो गयी कि एक युवा वैज्ञानिक अपने किसान पिता से कहता है कि मैंने एक ऐसे रसायन की खोज की है जिसे जिस किसी पात्र में रखिये, उसे जला देगा। पिता ने सरल भाव से पूछा, 'बेटा, अभी तुमने उसे किस पात्र में रखा है?' यही बात

है यहाँ भी। हम तो नश्वर हैं, परिवर्तनशील हैं, और वह है ईश्वर, अपरिवर्तनशील। अब उस शक्ति, उस चेतना, उस तत्त्व का अनुभव करने की क्षमता हममें है क्या? नहीं है। योग की इन विधियों से मनुष्य अपने अन्दर पात्रता लाता है, क्षमता उत्पन्न करता है। अत: शरीर, मन और आत्मा के आयामों का, मस्तिष्क, हृदय और हाथ की क्षमताओं का समन्वय अति आवश्यक है।

योग के तीन आयाम

शरीर को साथ लेकर चलना आवश्यक है, मन को भी साथ लेकर चलना आवश्यक है। शरीर के साथ मन का भी संयोग होता है। महर्षि पतंजलि कहते हैं, जब शरीर संतुलित हो जाए, नीरोग हो जाए तब मन के क्षेत्र में प्रवेश करो। योग को हम तीन भागों में बाँट सकते हैं। पहला चिकित्सा विज्ञान, दूसरा मनोविज्ञान, और तीसरा जीवन विज्ञान। योग का जो अंग शरीर से सम्बन्धित है वह चिकित्सा विज्ञान है, अर्थात् आसन और प्राणायाम। आप सम्भवत: विश्वास न करें, पर विश्व में योग के ऐसे अद्भुत प्रयोग हुए हैं, जिनसे पुष्टि होती है कि कैंसर जैसा मारक रोग भी योगाभ्यास से ठीक हो जाता है। मुंगेर में नवम्बर 1993 में जो विश्व योग सम्मेलन हुआ था, उसमें हमारे इंग्लैण्ड स्थित योगाश्रम की संचालिका, स्वामी प्रज्ञामूर्ति ने घोषणा की थी कि योग के द्वारा अब एड्स जैसा रोग भी दूर हो सकता है, और ऐसा प्रयोग उन्होंने किया है। एड्स ऐसा रोग है जिसका समाधान आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के पास नहीं है। परन्तु वह समाधान योग के पास है। योग का जो पक्ष शरीर में संतुलन लाता है, शरीर की क्षमता को जाग्रत करता है, उसका एक रूप चिकित्सात्मक भी है।

इसका दूसरा पक्ष है मनोवैज्ञानिक। महर्षि पतंजलि ने इस पक्ष में प्रत्याहार तथा धारणा को रखा है। कहते हैं मन चंचल है ही, और चंचल रहेगा भी, क्योंकि इसको संयत रखने की शिक्षा हमें कभी मिली ही नहीं है। जब तक मन चंचल रहेगा, बिखरा रहेगा, जैसे एक बिजली के बल्ब की रोशनी चारों ओर बिखरती है, तब तक आप उसका सार्थक प्रयोग नहीं कर सकते। लेकिन बिजली के बल्ब से प्रसारित होने वाली प्रकाश किरणों को यदि हम एक बिन्दु में केन्द्रित कर दें तो उसका रूप हो जाता है 'लेसर किरण' का, जिसमें इतनी शक्ति होती है कि वह लोहे की चादर में छेद कर सकती है। मात्र बिखरी हुई प्रकाश किरणों का केन्द्रित रूप है यह ऊर्जा। ठीक इसी प्रकार यदि हम मन की ऊर्जा को एक बिन्दु में केन्द्रित कर दें, अपनी अनुभूतियों और मानसिक अवस्थाओं को एकाग्र कर दें, तो हमारा जो सूक्ष्म अस्तित्व है – मन, वह एक प्रचण्ड शक्ति का रूप धारण कर सकता है। आपका जो लक्ष्य होगा, वहाँ तक तो वह पहुँचा कर ही रहेगा। प्रत्याहार और धारणा में इस विधि की शिक्षा दी जाती है। यही है योग का मनोविज्ञान। इसके

द्वारा आप अपने परम संभावना वाले मन को समझ सकते हैं, तथा उसे केन्द्रित कर उसकी विक्षिप्त शक्तियों को एकाग्र करना सीखते हैं।

जब मन एकाग्र एवं शान्त हो जाता है, तब प्रारम्भ होता है योग का जीवन-विज्ञान पक्ष। इस पक्ष में आते हैं ध्यान और समाधि। इन्हें समझने के लिए इन दोनों के व्यावहारिक पक्ष को देखना चाहिए। लोग तो समाधि के नाम से घबरा जाते हैं कि पता नहीं इसमें क्या हो जाए, पर यह है बड़ी व्यावहारिक पद्धति। ध्यान और समाधि शक्ति की एकाग्रता, केन्द्रीकरण एवं चेतना की जागृति के प्रतीक हैं। दो तत्त्व हैं, चेतना और शक्ति। बाल्यावस्था में मैं एक दिन अपने गुरुदेव से खेल-खेल में पूछ बैठा था कि एक लंगड़ा और एक अन्धा हैं, वे दोनों कहीं दूर जाना चाहते हैं, कैसे पहुँचेंगे, आप बताइये तो। मैं तो उस समय बच्चा था, गुरुजी से बस एक पहेली पूछी थी। पर गुरुदेव मुस्कुरा उठे, और कहने लगे, अरे, इसमें कौन-सी बड़ी बात है। इसका उत्तर मैं थोड़ी देर में दूँगा। उन्होंने इसका उत्तर दिया अपने एक सत्संग में। हमारे अन्दर जो चेतन तत्त्व है, वह लंगड़ा है। देख तो सकता है पर चल नहीं सकता। हमारे भीतर जो शक्ति तत्त्व है, वह चल तो सकता है, पर देख नहीं सकता। वह है अन्धा। अगर शक्ति तत्त्व पर शिव तत्त्व आरूढ़ हो जाय, अर्थात् अंधे के कन्धे पर लंगड़ा चढ़ जाए, तो दोनों कहीं भी जा सकते हैं। लंगड़ा मार्ग बतायेगा और अन्धा उसके निर्देशानुसार चलता जायेगा। हमने तो पूछी थी एक छोटी-सी पहेली, पर गुरुदेव ने अनुग्रह कर इतना सारगर्भित उत्तर दिया, जिसे मैं

आज तक नहीं भूला हूँ। यह है भी वास्तविक सत्य कि चेतना में साक्षी होने, द्रष्टा होने की क्षमता है, और शक्ति गतिशील होते हुए भी अन्धी है। इन दोनों को हम अपने जीवन में अनुभव करते हैं।

इन दोनों का संयोग कर चलना हमारा काम है। अत: यहाँ शक्ति का उत्थान होना चाहिए और साथ ही चेतना का विकास होना चाहिए। इसका अनुभव होता है ध्यान की अवस्था में, तथा इसकी पूर्णाहुति होती है जब दोनों पूर्णत: जाग्रत हो जाते हैं। और जागृति के पश्चात् जब वे एकाकार हो जाते हैं, तो उस रूप को योग शास्त्र में कहते हैं अर्द्धनारीश्वर रूप। तभी ध्यान और समाधि पूर्ण होते हैं। इस क्रम में विचार और व्यवहार में जो परिवर्तन आते हैं, उसका कारण होता है यम-नियमों का आचरण।

यम-नियम

राज योग में यम हैं – सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य, तथा नियम हैं – शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान। लेकिन इन्हें सिद्ध करने के लिये आपको आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार और धारणा को पहले सिद्ध करना होगा। महर्षि पतंजलि ने जिस युग में योग दर्शन की व्याख्या की थी, उस समय के लोग, उनकी मानसिकता, सामाजिक परिस्थितियाँ आज से भिन्न थीं। इसलिये उन्होंने सर्वप्रथम यम और नियम को रखा था। पर आज की परिस्थितियों में हम पहले आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार और धारणा को रखेंगे, उसके उपरान्त यम-नियम और अन्त में ध्यान तथा सबसे अन्त में समाधि। जब तक मन शान्त नहीं होता, आन्तरिक शुद्धि नहीं होती, तब तक यम-नियम का पालन स्वाभाविक रूप से किसी के लिये संभव नहीं है। यदि शरीर शुद्धि और प्रारम्भिक प्रक्रियाओं का पालन किये बिना हम यम-नियम का पालन करने का प्रयास करते हैं, तो अत्यधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा।

गधे को शेर की खाल पहना दें तो भी वह गधा ही रहेगा, शेर नहीं बन जायेगा। इसी तरह बिना पूर्व तैयारी के, बिना आन्तरिक अनुशासन के, बिना मानसिक अनुशासन के यदि आप यम-नियम को ओढ़ते हैं तो किसी भी क्षण आपकी आन्तरिक अनुशासनहीनता आपका भंडाफोड़ कर ही देगी। इसलिए मैं कहता हूँ कि योग का प्रारम्भ शरीर से हो। शारीरिक संतुलन प्राप्त करने के बाद मन के क्षेत्र में प्रवेश किया जाए। मानसिक संतुलन एवं संयम प्राप्त करने के बाद आचार-व्यवहार स्वत: शुद्ध हो जाते हैं। जिस समय भीतर में छल, कपट, ईर्ष्या, क्रोध, कामना, महत्त्वाकांक्षा तथा राग-द्वेष नहीं रह जाएँगे, उस समय ध्यान की अवस्था को प्राप्त करना कठिन नहीं होगा। वह तो क्षण मात्र का अनुभव है। यही है योग की विधि।

समाज में योग का समावेश

आज इसी योग को विश्व के बुद्धिजीवी, वैज्ञानिक और चिकित्सक अपना रहे हैं। पश्चिम के देशों में 1977 से ही योग शिक्षा का अनिवार्य अंग हो गया है। फ्रांस, इंग्लैंड, कनाडा और अमेरिका जैसे देशों में हमारे संन्यासी स्कूलों के शिक्षकों को योग सिखाते हैं, तथा योग प्रशिक्षित शिक्षकगण अपनी-अपनी कक्षा में छात्रों को योग सिखाते हैं। वे कैसे सिखाते हैं? प्रत्येक कक्षा के प्रारम्भ में एक आसन और एक प्राणायाम कराया जाता है। इस प्रकार दिनभर की आठ घंटियों में प्रत्येक घंटी के बाद पाँच मिनट के लिए आसन-प्राणायाम करा दिया जाता है, अर्थात् दिनभर में कुल आठ बार। यह पी.टी. की तरह नहीं होता, बल्कि शैक्षिक प्रक्रिया में ही आत्मसात् कर लिया जाता है। इस प्रयोग को बहुत अधिक सफलता मिली है। इस तरह शिक्षा के क्षेत्र में योग का प्रवेश हो गया है।

चिकित्सा क्षेत्र में भारत तथा विश्व के अनेक देशों में योग को चिकित्सा पद्धति के रूप में अपनाया जा रहा है। कहीं कैंसर की रोकथाम के लिये, कहीं मधुमेह के उपचार के लिये, कहीं पर उच्च रक्तचाप नियंत्रण हेतु तो कहीं पर दमा के उपचार हेतु। अन्य रोगों के उपचार के लिये भी योग का व्यापक रूप से उपयोग हो रहा है। बिहार में स्वास्थ्य विभाग के सभी डॉक्टरों को योग का प्रशिक्षण लेने का आदेश हुआ है। बिहार के लगभग सोलह हजार सरकारी सेवारत डॉक्टर अब योग का प्रशिक्षण अनिवार्य रूप से प्राप्त करेंगे। तीसरा क्षेत्र जहाँ योग की आवश्यकता महसूस की गयी है, वह है जेल। ऑस्ट्रेलिया तथा भारत के विभिन्न राज्यों में बन्दियों के व्यक्तित्व-परिवर्तन हेतु योग का प्रशिक्षण दिया जा रहा है।

आज विश्व ने योग की महत्ता और गुणवत्ता को समझा है तथा उसे एक जीवन विज्ञान के रूप में स्वीकार कर लिया है। शिक्षा, चिकित्सा, व्यक्तित्व-परिवर्तन इत्यादि के क्षेत्र में अनेक शोध कार्य भी चल रहे हैं। देखा जा रहा है कि ध्यान की अवस्था में चेतना में क्या परिवर्तन होता है, जप के समय क्या परिवर्तन होता है। योग जिन तथ्यों का दावा करता है वह भ्रान्ति है या वास्तविकता, इस पर शोध हो रहा है।

हमें पूर्ण विश्वास है कि योग प्रत्येक मनुष्य के जीवन का अनिवार्य अंग होगा। उस समय मानव जीवन में एक क्रान्ति आयेगी, समाज में क्रान्ति आयेगी, और योग पूरे समाज में ही परिवर्तन कर देगा। विगत विश्व योग सम्मेलन में भारत के थल सेनाध्यक्ष जनरल बी.सी. जोशी ने अनुरोध किया कि सेना को योग का प्रशिक्षण दिया जाए, ताकि वह अपनी क्षमता बढ़ा सके। सैनिकों को ऊँचे पहाड़ों पर रहना पड़ता है, सूखे मरुस्थलों में रहना पड़ता है। अत: उनकी कुछ मानसिक एवं भावनात्मक समस्याएँ होती हैं। सैनिकों की इन समस्याओं के समुचित समाधान हेतु योग का प्रवेश सुरक्षा सेना में हो रहा है। इस प्रकार जीवन का चाहे जो क्षेत्र हो – व्यावसायिक, तकनीकी, आध्यात्मिक, चिकित्सात्मक या शैक्षिक, उसमें योग का प्रयोग किया जा सकता है।

योग सनातन

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

जहाँ दिवा औ' निशा नहीं
विशुद्ध पावन निर्मल ज्ञान
वरद अभय, शाश्वत आनन्द
मौन सनातन वह गतिहीन
मृत्यु नहीं, नहीं प्रलय।
मन वाणी से भी योग नहीं
जग-जीव का पावन जीवन
आत्माओं का परमात्मा
नेत्ररहित स्पन्दन, परत: साक्षी,
प्राण सभी का शान्त सनातन।
उसको योग-सनातन कहते हैं
सर्वपूर्ण, आत्म क्रान्ति औ' परम शान्तिमय
युगनायक युगस्रष्टा विश्वम्भर
हृदय स्पन्दन में तड़िच्छटा
औ जग का अक्षय वैभव।
एक ज्योति है, एक उदधि पथ
दीप शिखा या जल-कण, लहर-लहर
नाम रूप का भेद परस्पर
पर तत्त्व एक है विश्व तथा है
विश्वम्भर वह विश्व नियन्ता
अणु-अणु में व्यापक तन्मय।
कर्मभूमि उप अर्जित जीवन स्वर्णिम
'भूमा तत्सुख' आप्त वचन यह
वही शास्त्र का पुरुष पुराण
द्रष्टा, श्रावक, मनुज-विधान
दूर नहीं पर अन्तर में है वह ज्योति सनातन
जीवन-प्राण आत्मा सबमें
क्या अंकुर, क्या वृक्ष विशाल।

कर्मों में रचनात्मकता

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

आध्यात्मिक मार्ग में हृदय-शुद्धि अर्जित करने के बाद हाथ की क्षमताओं और प्रतिभाओं को जागृत करना होता है। हाथ का तात्पर्य तुम्हारे कर्मों से है। हाथ कर्मों में कुशलता, निपुणता और पूर्णता के प्रतीक हैं; वे तुम्हारे व्यक्तित्व के सृजनात्मक आयाम को दर्शाते हैं।

तुम्हारे कर्म सृजनात्मक सिद्धान्तों द्वारा निर्देशित होने चाहिए, उनका स्वरूप रचनात्मक होना चाहिए। हाथों की प्रतिभा सृजनशीलता से आरम्भ होती है। यहीं पर कर्म-योग की अवधारणा आती है। जो भी कर्म तुम्हें करने हैं, चाहे वे शारीरिक हों या मानसिक या आध्यात्मिक, तुम उन्हें अवश्य करो, लेकिन उन कर्मों से कुछ अपेक्षा मत रखो। उनके फल पर दृष्टि गड़ाये मत रखो। अपनी ओर से सबसे बढ़िया प्रयास करो और कर्म की प्रतिक्रियाओं से अपने आप को अप्रभावित रखो।

अनपेक्षा का दृष्टान्त

मैं छ: वर्ष की अवस्था में आश्रम रहने आया था। उन दिनों श्री स्वामीजी जब कभी मुझे कोई काम करने को कहते, मैं उसे पूरा करने तुरन्त दौड़ पड़ता और काम खत्म करके उनके सामने जा खड़ा होता। वे केवल इतना ही पूछते, 'काम पूरा हो गया?' मैं गर्व से कहता, 'जी हाँ, स्वामीजी।' वे कभी 'शाबाश' या 'बहुत अच्छा' नहीं कहते, बल्कि उनका अगला निर्देश होता, 'ठीक है, अब यह दूसरा काम करो।'

काफी दिनों बाद जब मैं सयाना हो गया तब मुझे समझ में आया कि कोई भी काम पूरा करने पर मेरे अन्दर एक सूक्ष्म अपेक्षा रहती थी – प्रशंसा के दो शब्दों की। वह अपेक्षा हमेशा बनी रहती, कभी पूरी नहीं होती। मैं अपना उदाहरण यह समझाने के लिए दे रहा हूँ कि गुरु के साथ भी अपेक्षा रहती है। समाज में तो निस्संदेह धन, सम्मान, नाम और यश की अपेक्षा रहती है, जो इस सूक्ष्म अपेक्षा से कहीं प्रबल होती है। लेकिन गुरु के सान्निध्य में कुशलता और निष्ठा के साथ कर्म करते हुए भी मन के किसी कोने में यह विचार रहता है, 'काश, स्वामीजी मेरे काम की प्रशंसा करें।' वही अपेक्षा मेरी भी थी। 'मुझे उम्मीद है कि स्वामीजी को मेरा काम पसन्द आएगा। वे मेरी पीठ थपथपायेंगे और कहेंगे – वाह निरंजन, तुमने कमाल कर दिया।' पर ऐसा कभी हुआ नहीं। जब मुझे इस अपेक्षा का आभास हुआ, मैं सतर्क हो गया। मैंने सोचा, 'अरे, मेरे अन्दर तो यह सूक्ष्म अपेक्षा छिपी है, जो दर्शाती है कि मैं अपने कर्म से कुछ-न-कुछ जरूर चाहता हूँ। यह ठीक नहीं।' जिस दिन मैंने इस विषय पर सोचना बन्द किया, उस दिन पहली बार श्री स्वामीजी ने मेरी पीठ थपथपायी!

शिष्यों के जीवन में भी अपेक्षा रहती है। यह बात तुम सब पर लागू होती है, फिर भी तुम लोग प्रवचन देते हो कि कोई अपेक्षा मत रखो। तुम्हारे अन्दर अपेक्षाएँ भरी हैं पर दूसरों को अनपेक्षा का उपदेश देते फिरते हो। केवल इसलिए कि भगवद्गीता में यही कहा गया है, स्वामी शिवानन्द जी यही कहते थे, स्वामी सत्यानन्द जी भी यही कहते हैं। सैकड़ों प्रवचन देने के बावजूद तुम्हारे मन की गहराइयों में फल की आशा और अपेक्षा बनी रहती है। संन्यासी भी कर्म योग सिद्ध नहीं कर पाते हैं। मैं तब तक कर्म योग सिद्ध नहीं कर पाया जब तक मैंने यह नहीं समझा कि मुझे अपने गुरु से कुछ अपेक्षाएँ हैं।

बोरियत का इलाज

अपने कर्मों को सुधारने का उपाय यही है कि उनके साथ तादात्म्य मत रखो, लेकिन साथ ही जब उन्हें करते हो तो उनमें जी-जान लगा दो, अपनी पूरी रचनात्मकता लगा दो। एक संन्यासी के रूप में मेरे जीवन में अनेक दौर ऐसे रहे हैं जहाँ मेरी दिनचर्या लम्बे अरसे तक एक-समान रही। लेकिन मैं अपनी दिनचर्या से कभी नहीं ऊबा। बेशक दूसरे लोगों को ऊबते और हताश होते देखता हूँ। 'रोज मुझे उसी दफ्तर में जाना पड़ता है, उन्हीं लोगों से मिलना पड़ता है, उन्हीं समस्याओं का सामना करना पड़ता है', इस तरह के विचार तुम लोगों के मन में आते हैं। 'रोज वही मेज, वही वाऊचर लिखना, वही रसीद बनाना।' तुम अपने काम से ऊब जाते हो, दिनचर्या से बोर हो जाते हो। जब बोरियत आ जाती है, तब रचनात्मकता समाप्त हो जाती है, मन पर नियंत्रण छूटने लगता है।

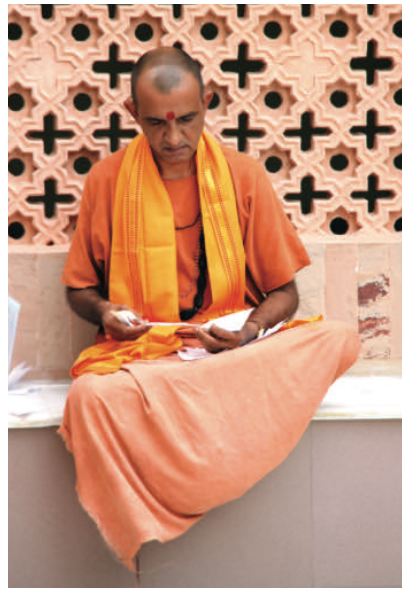

मैं आज तक कभी नहीं ऊबा, क्योंकि मेरे गुरु ने योग सिद्ध करने के लिए मुझे एक सूत्र दिया था, जिसके प्रति मैं शुरू से सजग रहा और जिसका मैंने हमेशा पालन किया। उन्होंने कहा था, 'जो भी काम करते हो, ऐसा सोचकर करो कि जीवन में तुम उसे पहली और अन्तिम बार कर रहे हो। हर दिन के बारे में यही सोचो कि तुम्हारे जीवन का यह पहला और आखिरी दिन है।' बचपन से ही मैं प्रतिदिन सोचता, 'यह मेरे जीवन का पहला दिन है, और आज मैं जो भी करूँगा, उसे बेहतरीन तरीके से करूँगा।' कई बार मुझे पत्राचार

जैसे आश्रम के सामान्य काम-काज करने को मिलते थे, पर मैंने कर्म के प्रति एक ऐसा दृष्टिकोण विकसित किया जो मेरे व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बन गया है – 'आज मेरे जीवन का प्रथम दिन है, इसलिए इसे अच्छी तरह जीना है, प्रसन्नता के साथ जीना है और पूर्ण रचनात्मकता के साथ जीना है।' एक ही पत्र को बीस बार लिखना पड़ता तो भी मैं ऊबता नहीं था। हर प्रयास मेरे लिए प्रथम और अन्तिम था। चाहे साफ-सफाई का काम हो, योग की कक्षा चलानी हो अथवा कोई प्रशासनिक काम हो, मैंने कभी किसी काम में बोरियत महसूस नहीं की। इसी वजह से मैं अपनी सारी ऊर्जा और सजगता सही काम को सही ढंग से करने में लगा पाया।

कर्मों के प्रति नवीन दृष्टिकोण का विकास

कर्म योग वास्तव में जीवन की परिस्थितियों, घटनाओं और परिणामों के प्रति अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन है। जब तुम कर्म योग का अभ्यास करते हो, तब जीवन में किसी प्रकार का असंतोष नहीं होता। यदि सभी काम ऐसे कर रहे हो जैसे पहली बार और उनमें तुमने पूरी जी-जान लगा दी है तो फिर असंतोष क्यों होगा? ऐसी मनोदशा में असंतोष का प्रश्न ही नहीं उठता। असंतोष का अनुभव तब होता है जब तुम्हें लगता है कि तुमने पर्याप्त प्रयास नहीं किया। पर्याप्त प्रयास क्यों नहीं कर पाये? या तो तुमने काम को ठीक से समझा नहीं या फिर तुम आलसी थे।

इसलिए रचनात्मकता को हम हाथों की प्रतिभा की कसौटी मानते हैं। रचनात्मक बनने के लिए प्रारम्भ में तुम्हें सजग प्रयास करना होगा। सजग प्रयास के बिना रचनात्मकता प्राप्त नहीं हो सकती। प्रारम्भ में यह सजग प्रयास एक निश्चित अवधि के लिए आवश्यक है। एक बार तुम इस मानसिकता में ढलकर अपने कर्मों के प्रति एक नया दृष्टिकोण अपना लेते हो, तब रचनात्मकता तुम्हारे व्यक्तित्व का स्वाभाविक अंग बन जाएगी।

यौगिक अध्ययन के अनुभव 2019-20

बिहार योग भारती का यह प्रशिक्षण हमारे लिए बहुत महत्त्वपूर्ण था, क्योंकि हम अपने जीवन में इतना भटक गये थे कि सही रास्ता दिखाने का काम सिर्फ इस जगह ने किया है। सकारात्मक जीवन कैसे जियें, यह इस जगह ने हमें सिखाया है। यहाँ की हर एक चीज बहुत सुन्दर है और शान्ति देती है। योग का सही महत्त्व क्या है, योग को सही तरह से अपने जीवन में कैसे उतारना है, यह यहाँ से सीखने को मिला। गुरुजी हमेशा बोलते थे कि योग सिर्फ आसन या प्राणायाम करने से सिद्ध नहीं होता, योग को अपनी जीवनशैली बनाओ। गुरुजी के सत्संग से हमें एक ऊर्जा मिलती थी और धीरे-धीरे यह बात समझ में आने लगी कि सकारात्मक दृष्टिकोण से हम अपने जीवन को कितनी खुशी और शान्ति से जी सकते हैं।

हमारे लिए यह जगह अतुल्य है क्योंकि इसने हमारे जीवन को नई दिशा दी है। यहाँ की कक्षाएँ, कीर्तन, सत्संग, हर एक चीज बहुत प्यारी लगी। यह सब गुरुजी का आशीर्वाद है कि हमें यहाँ आने का और इतना कुछ सीखने का मौका मिला। गुरुजी को कोटि-कोटि धन्यवाद!

– शुभांगी अमृतकर, पुणे

अपने भावों को व्यक्त करने के लिए उपयुक्त शब्द तो नहीं है मेरे पास, क्योंकि जो कुछ भी यहाँ पर सीखा और जिस आंतरिक खुशी का अनुभव किया, वह अतुलनीय है। इन तीन महीनों में मैंने अपने आपको एक बेहतर इन्सान बनते हुए पाया, जैसा मैं खुद को देखना चाहती थी। मैंने ऐसा सुना था कि भगवन्नाम में सुख और शान्ति की अनुभूति होती है, किन्तु कभी अनुभव नहीं हो पाया। शायद मैंने ही भगवान से एक दूरी बना रखी थी कि उन्होंने आखिर मेरे जीवन में इतने कष्ट क्यों दिये, जिनसे अपने ही शरीर और मन में सामंजस्य स्थापित न हो सका। बीते वर्षों में मैंने काफी प्रयास किये कि अपने आपको इस सबसे बाहर निकालूँ, किन्तु सही मार्गदर्शन के अभाव में विषाद का ही सामना करना पड़ा। मैंने हार नहीं मानी और जिन्दगी को खुशहाल बनाने के लिए अपने को फिर से तैयार किया। अंतत: यहाँ आकर मुझे समझ आया कि मेरी इस मजबूती और दृढ़ता का श्रेय जीवन के उन कटु अनुभवों को ही जाता है तथा मेरी मानसिक अशांति ही माध्यम बनी आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश के लिए।

यहाँ पर मैंने खुद को उन सभी सीमित विचारों से पूर्णतया मुक्त किया है जो मुझे जीवन को भरपूर जीने नहीं देते थे। भगवन्नाम गाने और उसकी सच्ची अनुभूति प्राप्त करने का अद्भुत आनन्द पाया है। गीता, सुन्दरकाण्ड और अन्य स्तोत्रों को पढ़ना

मेरे लिए काफी लाभदायक रहा। भक्ति साधना से मेरी भावनाओं को सही दिशा मिल रही है, अपने आपको भगवान और गुरु से जोड़ पाने की खुशी अवर्णनीय है। गुरुकृपा को तो हर रूप में बरसते देखा है यहाँ पर। नारायणास्त्र यज्ञ, शिव-आराधना, गुरु भक्ति योग तथा संक्रांति पूजा जैसे आध्यात्मिक अनुष्ठानों में सम्मिलित होने मात्र से अपने अन्दर सकारात्मकता और आंतरिक तृप्ति का अनुभव हुआ। स्वामीजी के सत्संग तो मानो अमृतवर्षा हैं। जब उनका पंचाग्नि दर्शन मिला तो उस क्षण इतनी तृप्त हो गयी कि जीवन में अब और कुछ नहीं चाहिए। गुरु के शरीर से परे गुरु तत्त्व का आभास हुआ और अपने शरीर में नूतन ऊर्जा का स्पन्दन महसूस किया। मुझे जिस प्रेरणा और दिशा की आवश्यकता थी, वह मुझे यहाँ से मिली है। मुझे अपने आप से मिलाने के लिए और जीवन को भरपूर जीने को प्रोत्साहित करने के लिए सभी आश्रमवासियों को धन्यवाद! जय गुरुदेव!

– मनीषा झा, नई दिल्ली

यौगिक अध्ययन में भाग लेने का मेरा मुख्य उद्देश्य आसन-प्राणायाम सीखना नहीं, बल्कि अपनी जीवनशैली को व्यवस्थित करना तथा अच्छी विचारधाराएँ एव आदतें विकसित करना था। यह एक बहुत ही सुन्दर अनुभव रहा, जिसमें बहुत-सा उल्लास, ऊर्जा और आनन्द शामिल रहा। साथ ही आत्म-चिंतन और आत्म-सुधार का दौर भी चलता रहा। आश्रम में रहते हुए हठयोग और राजयोग सीखने के अलावा कर्मयोग एवं भक्तियोग का अनुभव भी मिला, जिसमें विभिन्न दैनिक परिस्थितियों में अपनी प्रतिक्रियाओं को देखने और विचार एवं संयम के माध्यम से सुधारने का अवसर मिला। यह कला न केवल आश्रम में, बल्कि जीवन के हर क्षेत्र में काम आएगी ताकि हम सहयोग की भावना से काम करते हुए शाश्वत शांति प्राप्त कर सकें।

– संन्यासी कैवल्य, बेंगलुरु

बिहार योग विद्यालय और यहाँ पर संचालित यौगिक अध्ययन सत्र के रहस्यमय जादू को शब्दों में कैसे बयाँ किया जाए? यह स्थान गुरु की कृपा और यहाँ के अन्तेवासियों की वजह से अति विशिष्ट है। मैं अपने आप को बहुत भाग्यशाली मानती हूँ जो इस सत्र में शामिल हो सकी, क्योंकि यह सत्र न केवल योग के बारे में है, बल्कि हमारे पूरे जीवन से सम्बन्ध रखता है। हमलोगों की यह गलतफहमी है कि योग का अभ्यास केवल क्लासरूम और स्टूडियो में हो सकता है। यहाँ आप पाएँगे कि क्लासरूम हर जगह है – आपका भवन, रसोईघर, सेवा की जगह, सभी स्थानों से आपको योग की शिक्षा मिल सकती है। यहाँ सबसे महत्त्वपूर्ण चीज यही सीखी कि योग को क्षण-प्रतिक्षण जीना है – मस्तिष्क में सजगता, हृदय में प्रेम और हाथों में रचनात्मकता के साथ।

– जिज्ञासु ज्ञानदर्शी, कज़ाकस्तान

अपने आन्तरिक अनुभव को शब्दों में व्यक्त कर पाना बहुत कठिन है। यहाँ पर आते ही मेरी पहली अनुभूति सुरक्षा और स्थिरता की थी। आश्रम वातावरण में मानो एक जादुई मंगलता व्याप्त थी। सत्र के दौरान अपनी आन्तरिक यात्रा में अनेक पर्वतों पर चढ़ी और अनेक गहरी घाटियों में उतरी। सच कहूँ तो एक बहुत बड़ा डर था मुझमें, कहीं यहाँ मेरी 'ब्रेनवॉशिंग' न हो जाए। पर शायद मन-मस्तिष्क की अच्छी तरह सफाई ही मेरी सबसे बड़ी जरूरत थी। अपने दिमाग से दबी भावनाओं और विचारों को निकालने में कुछ बुरा नहीं, बल्कि अच्छा ही है।

स्वामीजी, आंतरिक शुद्धि की इस प्रक्रिया से हमें ले जाने के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। और अपनी पंचाग्नि साधना के दर्शन के सुअवसर के लिए हार्दिक आभार! उस दर्शन से मैं इतनी भावुक हो गई कि अपने आँसुओं को रोक नहीं

पाई। अपनी उस प्रेरक शक्ति के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद जिसने हमारी भीतर से पूरी सफाई कर दी और दिव्यता की एक अनुपम झलक दिखलाई।

– मारिलेना मायर, जर्मनी

तीन महीनों के इस गहन प्रशिक्षण के बाद मुझे लगता है कि हम सभी विद्यार्थी भीतर की गहराइयों तक जाने वाली यात्रा शुरू कर पाए हैं। व्यक्तिगत तौर पर मेरे लिए इन तीन महीनों का सबसे महत्त्वपूर्ण अनुभव आश्रम जीवन रहा। आश्रम की सीढ़ियों पर चढ़ना-उतरना मानो भीतर हो रहे उतार-चढ़ावों का बाहरी प्रतिबिम्ब था। हम सभी बहुत भाग्यशाली रहे कि सत्र के दौरान अनेक विशेष कार्यक्रमों और अनुष्ठानों में भाग लेने का अवसर मिला जिसने हमारे आश्रम अनुभव को और गहरे रंगों में रंग दिया। हमारे भीतर एक विशेष ऊर्जा संचरित हुई, हमें अवसर मिला अपने हृदय को खोलने का, अपने भीतर की सफाई करने का। आश्रम ने हमें वह सब दिया जो हमारी जरूरत थी, चाहत नहीं। और हम यहाँ से प्रस्थान कर रहे हैं, मस्तिष्क में एक अद्भुत अनुभव की स्मृति के साथ, हृदय में यौगिक जीवनशैली के बीज के साथ और हाथों में ऐसे साधनों के साथ जिनसे हम इन अमूल्य शिक्षाओं को अपने जीवन में उतार सकें। अपने सभी शिक्षकों और यहाँ के सभी अन्तेवासियों को हार्दिक आभार, जिनसे हमें बहुत कुछ सीख मिली, सहारा मिला।

अंत में सबसे बड़ा धन्यवाद गुरुजी को, जो इस अद्भुत स्थान के केन्द्र-बिन्दु हैं, ऊर्जा स्रोत हैं, जिन्होंने अपना जीवन हम सबके लिए समर्पित कर दिया है। उनकी इसी प्रेरक ऊर्जा ने हम सबको दुनिया के कोने-कोने से आकर्षित किया, क्योंकि इस

ऊर्जा में सत्य निहित है और उसी सत्य की वजह से हमारा हृदय इस स्थान से जुड़ा है और यहाँ बार-बार वापस आना चाहता है। मुझे लगता है हम यहाँ पर जो कुछ कर रहे हैं, वह परमात्मा की सबसे बड़ी आराधना है। यहाँ आकर हम भीतर की यात्रा प्रारम्भ करते हैं, अपने आपको सुधारने का काम शुरू करते हैं। कई बार यह कार्य बहुत कठिन होता है, लेकिन हम अब इस दिव्य कार्य के प्रति कटिबद्ध हैं और इस सत्र ने हमें वह आधार, वह ऊर्जा दे दी है जिससे हम यह कार्य भविष्य में भी जारी रख सकें।

– शाहार मिलर, इस्रैल

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

शिव चरित्र

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

पृष्ठ 242, ISBN: 978-93-81620-18-2

13 से 19 फरवरी 2009 तक शिवालय प्रांगण में स्वामीजी के श्रीमुख से शिव-चरित्र की जो अमृत वर्षा हुई, उन्हीं अमृत कणों को संजोकर यह पुस्तक तैयार की गयी है। उन्होंने पाशुपत तंत्र, शिव-शक्ति, शिवलिंग आराधना, शिव-भक्ति आदि विषयों की व्याख्या के साथ-साथ शिव चरित्र के गूढ़ रहस्यों को उद्भासित किया। भगवान शिव की निश्छल भक्ति से पूर्ण प्रसंगों ने सम्पूर्ण शिवालय प्रांगण को भक्ति-रस से ओत-प्रोत कर दिया। अपने जीवन में शिवानुग्रह की अनुभूति के अभिलाषी भक्तों एवं साधकों के लिए यह एक प्रेरक मार्गदर्शिका है।

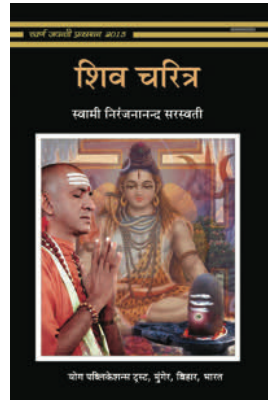

उपलब्ध

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें –
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
दूरभाष : 91–6344–222430, 9162783904

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा

वेबसाइट और एप्प

SATYANANDA YOGA
BIHAR YOGA

www.biharyoga.net

बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट पर सत्यानन्द योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती तथा योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट संबंधी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

सत्यम् योग प्रसाद

मुंगेर योग संगोष्ठी 2018 के अवसर पर स्वामी सत्यानन्द जी एवं स्वामी निरंजनानन्द जी की समस्त प्रकाशित कृतियाँ *www.satyamyogaprasad.net* वेबसाइट पर तथा *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में प्रस्तुत की जा रही हैं।

बिहार योग विकी

मुंगेर योग संगोष्ठी 2018 के अवसर पर ऑनलाइन विश्वकोश *www.yogawiki.org* प्रस्तुत किया जा रहा है जहाँ सभी साधकों के लिए यौगिक शिक्षाएँ सुगम रूप में उपलब्ध होंगी।

योगा एवं योगविद्या ऑनलाइन

www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

अन्य एप्प (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)

- योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट की लोकप्रिय पुस्तक, ए.पी.एम.बी. अब सुविधाजनक एप्प के रूप में उपलब्ध है
- बिहार योग एप्प साधकों के लिए प्राचीन और नवीन यौगिक ज्ञान आधुनिक ढंग से पहुँचाता है

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. MGR-01/2017
  Office of posting: Ganga Darshan TSO
  Date of posting: 1st–7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2020

मार्च 14–20	हठ योग यात्रा 1 एवं 2
अप्रैल 1–30	एकमासिक योग प्रशिक्षण (हिन्दी)
अप्रैल 4–8	योग जीवनशैली कैप्सूल (हिन्दी/अंग्रेजी)
अप्रैल 13–19	राज योग यात्रा 1 एवं 2
सितम्बर 19–25	राज योग यात्रा 1 एवं 2
अक्टूबर 1–30	बिहार योग शिक्षकों के लिए प्रगतिशील प्रशिक्षण 1 (अंग्रेजी)
नवम्बर –जनवरी 2021	त्रिमासिक योग अध्ययन (अंग्रेजी)
नवम्बर 2–8	क्रिया योग यात्रा 1 एवं 2
नवम्बर 21–27	हठ योग यात्रा 1 एवं 2
दिसम्बर 2–6	योग जीवनशैली कैप्सूल (हिन्दी/अंग्रेजी)
दिसम्बर 25	स्वामी सत्यानन्द जन्मदिवस
जनवरी 3–6 2021	योग चक्र शृंखला (अंग्रेजी)

प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक एकादशी	भगवद् गीता पाठ
प्रत्येक पूर्णिमा	सुन्दरकाण्ड पाठ
प्रत्येक 4, 5 एवं 6 तारीख	गुरु भक्ति योग
प्रत्येक 12 तारीख	अखण्ड रामचरितमानस पाठ

उपर्युक्त सत्रों/ कार्यक्रमों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें–

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
फोन : 06344-222430, 9162783904
वेबसाइट : www.biharyoga.net

कार्यक्रमों एवं प्रशिक्षणों के आवेदन-पत्र यहाँ उपलब्ध हैं

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु अपना पता लिखा और डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा